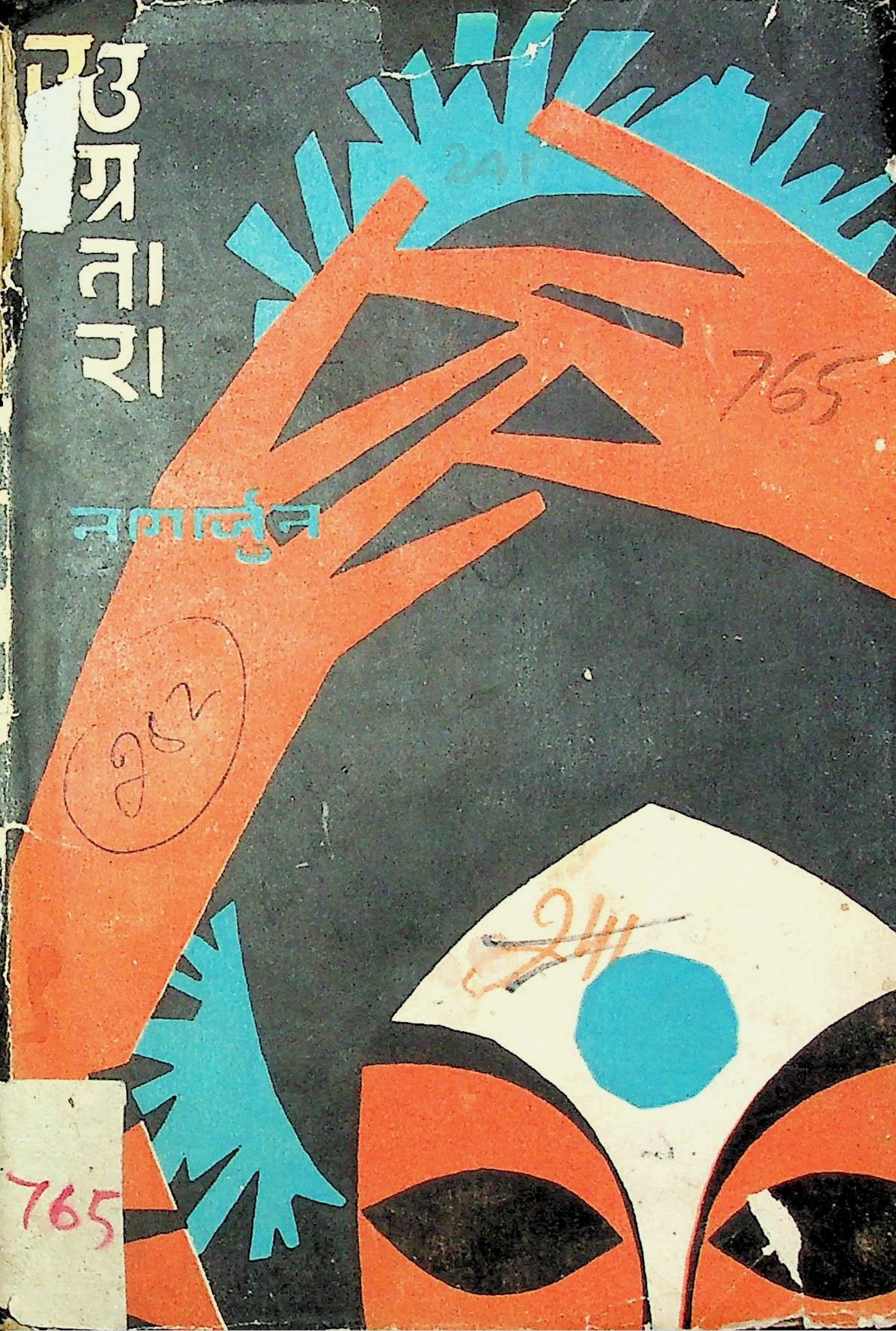
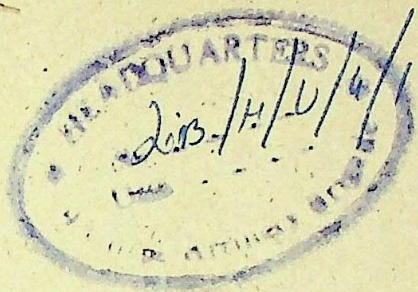

उग्रतारा
नागार्जुन

नागार्जुन हिन्दी के अत्यन्त जाने-माने कथाकार हैं। 'उग्रतारा' उनका एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

इस उपन्यास में एक ऐसे नारी-पात्र की संघर्ष-भरी कहानी है जो परिस्थितियों को उनकी यथार्थ पृष्ठभूमि पर सकारती है···जो बेबसी को ज़िन्दगी के एक अनावश्यक बोझ की तरह ढोती है पर मन के अन्तर-पटों पर जिसका कलुष नहीं लग पाता···और समय पाकर जिसका उदात्त चरित्र मुखर हो उठता है···

नागार्जुन की कलम की यह विशेषता है कि समाज की समस्याओं का मर्म ही वह छूती है। अपने छोटे कलेवर में 'उग्रतारा' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और पठनीय है।


HEADQUARTERS



उग्रतारा





राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली



उग्रतारा

नागार्जुन

मूल्य : चार रुपये (4·00)



तीसरा संस्करण 1970; © नागार्जुन
रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित
UGRATARA (Novel) by Nagarjun

युवक-कण्ठ की बुलन्द और भरी-भरी आवाज़ों से लाइन के क्वार्टर गूंज उठे। दोपहर का वक्त था, जाड़े का मौसम। सुहावनी धूप खुलकर फैली थी। सामने लाल ईंटोंवाली ऊंची दीवार लम्बी चली गई थी।

क्वार्टर निहायत मामूली किस्म के थे, चतुर्थवर्गीय सरकारी कर्मचारियों के क्वार्टरों की अपेक्षा कहीं अधिक फीके, कहीं अधिक बेडौल।

यह जेल के सिपाहियों का निवास-स्थान था। डिस्ट्रिक्ट जेल, रतनपुर।

"गिलाफ, कटपीस, ब्लाउज़!"—आवाज़ पिछवाड़े की तरफ से आ रही थी। फेरीवाला सामने की ओर आने ही वाला था। आवाज़ से उम्र का अन्दाज़ तो लगता था, चेहरे का नहीं। साफ था, ग्राहकों को अपनी ओर खींचने के लिए होंठों को काफी टेढ़ा कर लिया गया है।

उगनी सामने बर्तन फैलाए, काली हथेलियों को बार-बार देखने लगी। फेरीवाले की आवाज़ कानों से होकर मन-प्राण में धंसी जा रही थी। यह बिलकुल ही नया फेरीवाला होगा। जाने क्यों, इसकी स्वर-लहरी उगनी को उत्सुक बना रही है!

वह उठी, भारी पैरों से चार कदम चलके गई। टंकी की टोंटी खोलकर हाथ धोए, जल्दी-जल्दी में आंचल से उन्हें पोंछा और अन्दर आकर दीवार की ओर आधी नजर आईने पर डाली।

दो लटें पेशानी से चिपक रही थीं। बालों के काले छल्ले चम्पई

चेहरे पर बुरे नहीं लग रहे थे। वह खुद ही मन में दोहराने लगी—
'गिलाफ, कटपीस, ब्लाउज़···ब्लाउज़···कटपीस, गिलाफ···ब्लाउज़···बिलाऊज़···बिला···'

अवकी फेरीवाले ने भी उसके मन की आवाज़ का साथ दिया—
"ब्लाउज़, कटपीस, गिलाफ···ब्लाउज़···"

उगनी क्वार्टर की अपनी छोटी अंगनई को पार करके घेरेवाली किवाड़ों के बाहर झांकने को हुई थी कि बाहरी चौखट की खुरदरी कील से पल्ला उलझ गया। फेरीवाले को सामने पाकर भी उसके चेहरे को वह नहीं देख पाई।

पड़ोस के क्वार्टरों से निकलकर चार-पांच औरतों ने फेरीवाले को घेर लिया था। वह सहजन के पेड़ के नीचे गट्ठर रखे बैठ गया था। वह उन्हीं औरतों को माल दिखाने लगा था। उसने उगनी की ओर बिलकुल ही नहीं देखा।

वह लेकिन उसको देखकर सन्न रह गई! फौरन किवाड़ें बन्द कर लीं और वापस कमरे के अन्दर आकर तख्त पर आधी उतान लेट गई···

तो, इसने आखिर मेरा पता लगा ही लिया! कहां रहा होगा इतने दिन? भूल तो हम एक-दूसरे को सकते नहीं मगर अब भी क्या मैं उसके लायक रह गई हूं···

उगनी पेट पर हाथ फेरने लगी। बड़ी-बड़ी मूंछोंवाला अधेड़ सिपाही भभीखनसिंह सामने खड़ा मुसकराता दिखाई पड़ा। क्षण-भर के लिए उगनी ने सोचा—अन्दर जो चार महीने का शिशु पल रहा है, उसकी भी मूंछें क्या ऐसी ही डरावनी होंगी? वह भी क्या इसी तरह भारी बूटोंवाले पैर पटकता हुआ सामने आकर खड़ा हो जाया करेगा? वह भी क्या पचास साल की उम्र तक यूं ही कुआंरा रह जाएगा? वह भी क्या···

बाहर से उसी तरह मोल-भाव की आवाज़ आ रही थी। उगनी को लगा, पेट में दर्द उठा है। दर्द का यह एहसास और भी बढ़ता गया क्योंकि

बाहर सहजन की पतली छांहों के तले वह नौजवान आकर बैठ गया था, उगनी अपना दिल जिसके हवाले कर चुकी थी। फेरीवाला तो वह खास मतलब से बना है, दरअस्ल वह राजपूत नौजवान है। मढ़िया-सुन्दरपुर का रहनेवाला कामेश्वरसिंह। वह उगनी को किसी भी हालत में छोड़ नहीं सकता।

तो, कामेश्वर क्या सचमुच उसीके लिए आया है? क्या पता, कोई दूसरा हो। कामेश्वर तो अभी जेल से छूटा नहीं होगा। नौ महीने की सज़ा हुई थी न?

उगनी ने उंगली पर उंगली चलाकर हिसाब लगाया···जेठ, आषाढ, सावन, भादों, आसिन, कातिक, अगहन, और यह पूस! कितने हुए? हुए न आठ महीने! कामेश्वर माघ में छूटेगा। अभी कहां से आया कामेश्वर?

उगनी को लगा, किवाड़ों को बन्द नहीं करेगी तो फेरीवाला अन्दर आ जाएगा। फेरीवाला यानी कामेश्वर, कामेश्वर यानी फेरीवाला। दो भी हो सकते हैं और एक भी। दूसरा भी तो हो सकता है। नहीं?···

सोचते-सोचते माथा चकराने लगा और लगा कि अधिक वह सोच भी नहीं सकेगी। सोचेगी तो माथा फट जाएगा···

पलकें झिप गईं।

जेल के दूसरे छोर पर हनुमानजी का एक मन्दिर था। छोटी-सी बगीची बिलकुल पास थी। पांच-सात पेड़ आम के थे, दो नीम के, एक आंवले का। सब्ज़ी-भाजी उगाने के लिए दो क्यारियां।

मन्दिर का पुजारी बूढ़ा बाबाजी था, अपनी चतुराई के लिए पास-पड़ोस में काफी मशहूर। आसिन-कातिक में बहुत अच्छी रामलीला होती थी। बाकी सनीचर और मंगलवार की शाम को महावीरजी के दर्शनों के लिए थोड़े-बहुत लोग जुट जाते थे।

मन्दिर से ज़रा हटकर पुराना और पक्का कुआं था। थलकमल, रजनीगंधा, बेला और हरसिंगार के झाड़ कुएं की जगत को घेरकर जमे थे और हरे-भरे झुरमुट अपनी गोद में उस अमृतकुंड को छिपाए हुए थे।

दोनों आमने-सामने पत्थर पर बैठे थे। लगता था कुछ देर से बैठे हैं। उगनी की निगाहें झुकी थीं। कामेश्वर लगातार उसके चेहरे की तरफ देख रहा था।

गोल-मटोल, सुन्दर मुखमंडल उतना चमक नहीं रहा था। फीकापन की हल्की छाया उस छवि को उदास बना रही थी।···सुराहीवाली ख़ूब-सूरत गर्दन पर उगनी का वह चन्द्रवदन आज उस तरह खिल नहीं रहा था।

कामेश्वर ने सोचा—कितनी मुसीबत झेलनी पड़ी है इसे! क्या बुरा

किया ? उस मुछन्दर अधेड़ से शादी करके यहां बैठ गई, ठीक ही तो किया। और, मैं जो कुछ करनेवाला हूं, वह ठीक नहीं होगा क्या ? मैं उगनी को इस नरक से बाहर निकाल ले जाऊंगा। यह चेहरा फिर उसी तरह खिला-खिला रहेगा। पूरे चांद पर राहु की रत्ती-भर भी परछाईं मुझे चैन नहीं लेने देगी···

उगनी की निगाहों में कातरता छलक-छलक आती थी। अपराध की भावना खुलकर उसे कामेश्वर की ओर देखने नहीं देती थी। आठ महीने बाद दोनों ने इतने निकट से एक-दूसरे को देखा था मगर उगनी की तरफ से उमंग में उतना उफान कहां था! वह तो मिलना भी नहीं चाहती थी। कामेश्वर से इतनी जल्दी मुलाकात होगी, इतने पास आमने-सामने बैठना होगा, उगनी के दिमाग से इस प्रकार के ख्याल बिलकुल धुल गए थे। उसने नई परिस्थिति के सामने पूरी तरह आत्म-समर्पण कर दिया था। अब वह भभीखनसिंह की घरवाली थी। लाइन के क्वार्टरों में रहनेवाले छोटी उम्र के सिपाही उसके देवर थे। ट्रंक पर लापरवाही से रखे हुए ऊनी मोज़े अब उगनी के अन्दर विद्रोह नहीं जगाते थे। खूंटियों में टंगा हुआ खाकी लिवास अब उसकी निगाहों को चिढ़ाने की अपनी सामर्थ्य खो चुका था।

कामेश्वर ने कहा—"तू तो बदल गई है। कितनी हंसती थी पहले ! जेल के अन्दर मैं नहीं रह पाता अगर सूनी रातों में तेरी वह खिलखिलाहट सुनाई नहीं पड़ती। बालू और कंकड़वाला जेल का खाना एक कौर भी गले से नहीं उतरता अगर तेरी चूड़ियों की खनक कानों का साथ नहीं देती और···"

सामने से मुलायम हथेली उठी और कामेश्वर के होंठों पर पड़ी। यह उगनी की पुरानी आदत थी। कामेश्वर के होंठों पर अपनी हथेली धरके वह उसकी आंखों में झांकती रहेगी और मुसकराती जाएगी और कामेश्वर को अपने मीठे बोल के लिए देर तक तरसाएगी।

उगनी की हथेली को आहिस्ता से हटाकर कामेश्वर बोला—कुछ

कहेगी भी ? अकेला मैं ही बोलता जाऊं ?

उगनी की आंखें गीली हो आईं; होंठों का स्पन्दन भी दबा नहीं रहा। हटाई हुई हथेली को फिर से वापस लेकर कामेश्वर उसे सहलाने लगा। क्षण-भर बाद कहा, "देख, तुझे मेरे साथ चलना होगा। मैं तेरे विना विलल्ला होकर कव तक मारा-मारा फिरूं ?"

उगनी के गालों पर आंसू की रेखाएं पश्चिम आकाश की धूमिल आभा में जगमगा उठीं। अब भी वह कुछ कह नहीं रही थी। अन्दर लेकिन तूफानी बादल गड़गड़ा रहे थे। वादलों के उस गरजन में भभीखनसिंह की बड़ी-बड़ी मूंछें दिशा-निर्देश के संकेत वनकर फहरा रही थीं। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे, क्या न कहे।

"देख, मैं सब समझता हूं। मैंने ढेर-ढेर-सी किताबें पढ़ी हैं। मैं दो साल कलकत्ते रहा हूं। ऐसी हालत में पड़कर लड़कियां क्या हो जा सकती हैं, इसका अन्दाज़ा मुझको है। तुझे मैं लेने ही आया हूं। कोई भी वहाना नहीं चलेगा। हां, दो-एक रोज़ की छुट्टी मिल जाएगी।"

वह उगनी की हथेली को उल्टाकर दाएं हाथ की बीचवाली अपनी तीन अंगुलियों से उसे सहला रहा था। उगनी की आंखों से अब भी आंसू बह रहे थे। इधर-उधर की ऊपरी बातें वह पहले ही कर चुकी थी। साथ चलने या न चलने के सवाल पर अपने होंठों को ज़ब्त रखना ही उसे उचित जंचा। आंचल के छोर से चेहरा पोंछकर वह बोली, "कल मंगलवार है, यहां होगी भीड़। अब हमारी मुलाकात परसों होगी। जिस धर्मशाला में तुम ठहरे हो, वह बहुत बदनाम है। और कुछ नहीं, चोरी होती है। कहते हैं, जब से इधर बसों का अड्डा बना है उचक्कों की तादाद बढ़ गई है। संभल के रहना।"

सामने सीने पर एक बटन लटक रहा था। कामेश्वर कमीज़ नहीं, कुरता पहनता था। उगनी के अन्दर ममता की कचोट उभरी। सांस खींच कर बोली, "हाय, मैं तुम्हारे लिए इतना भी नहीं कर सकती ! सीने पर

कुरते का बटन इसी तरह झूलता रहेगा। सूत और ढीला होगा और ढीला होगा, छोर निकल आएगा, इस बटन से भी तुम्हें छुटकारा मिल जाएगा!"

उसकी आंखें फिर सजल हो आईं। सुबुक आवाज़ में उसने कहा, "मैं यहां हूं और तुम होटल में खाते हो। एक गिलास पानी तक मैं नहीं दे सकती। पिछले जनम में जाने कितने पाप किए थे···हे गंगा मइया···"

उसने चट से अपना रुख पश्चिम की ओर कर लिया, मानो गंगा के किनारे खड़ी है। भले ही गंगा यहां से पन्द्रह कोस पश्चिम बहती हो, उगनी लेकिन पूर्व जन्म के अपने पापों के लिए गंगाजी से कैफियत तलब करेगी ही!

कामेश्वर ने उठते-उठते उसकी पीठ पर हाथ रखा। बोला—पांच साल की बच्ची नहीं हो! क्यों इस तरह बात-बात में आंखें भिगोती हो। अगर मुझे पता होता तो तुम्हारे लिए मैं बुढ़िया का काजल लिए आता··· सुना है नाम बुढ़िया के काजल का? एक बार लगा लोगी तो हमेशा के लिए आंसू सूख जाएंगे!

इस विनोद ने उगनी के होंठों पर मुसकान की बुकनी छिड़क दी। आंखों का गीलापन भी होंठों को खिलने से रोक नहीं पाया।

'छिनाल बन जाऊंगी'—इसीने कहा था न ? ···भभीखनसिंह उगनी की ओर देख रहे थे और सोच रहे थे। जब कभी वे उगनी की ओर देखते हैं और फुर्सत में होते हैं तो कानों में वह बात बार-बार गूंज जाती है—'मैं छिनाल बन जाऊंगी।'

सीधा-सादा अधेड़ सिपाही सोचता है—आखिर कैसे यह बोल इसके मुंह से निकला होगा। दूसरा कोई कहता, तो शायद ही उसकी बात पर भभीखनसिंह को यकीन आता। मगर, जब इन्हीं कानों से यह बोल सुना है तो कैसे विश्वास नहीं करेंगे ? ···तो, यह छिनाल बन जाती ?

आज उगनी भभीखनसिंह की निगाहों में 'खानदानी राजपूत की ज़नाना' है। उस दिन वह देहात की आवारा छोकरी थी। उस आवारा छोकरी को फिर से इज़्ज़तदार घराने की मर्यादा देकर कितना बड़ा काम किया है भभीखनसिंह ने ! यह सोच-सोचकर उसका सीना फूल उठता है और हथेली की सूर्ती-चूने पर अंगूठे का वज़न कई गुना अधिक हो उठता है। अब यह अच्छे-भले मर्द के काबू में है। रामजी की मर्ज़ी होगी तो सोने जैसे बच्चे की मां बनेगी···

ड्यूटी रात की थी, आठ बजे से। दोपहर का खाना दस बजे खा लिया था और चार-पांच घंटे की गाढ़ी नींद ले ली थी। अभी-अभी फाटक वाले घंटे को चार बार ठोका गया है। लगता है, जाड़े का सूरज तेज़ी से धरती की ओर लुढ़क रहा होगा। भभीखनसिंह दिसा-फराकत से निबट-

कर आएंगे, नहा-धोकर इसी तख्तपोश पर पालथी मार के बैठेंगे और आधा घंटा रामायण बांचेंगे—भाषा-टीका समेत तुलसीदासी।

उगनी कमरे की चौखट से सटकर बैठी हुई थी। सामने थाली में मसूर की दाल छितराकर कंकड़ चुन रही थी। गुलाबी चूड़ियों की खनक भभीखनसिंह के कानों को बुरी लग रही थी। मोरछाप नीले किनारोंवाली गुलाबी साड़ी उगनी के भरे-गदराए चम्पई सूरतवाले शरीर पर खूब फब रही थी। थाली का गोल दायरा आंखों को बांधे हुए था और एक-एक कंकड़ पकड़ में आ रहा था।

दो-तीन बार कंकड़ों के बदले दाल के दाने ही थाली से बाहर गिरे। अगले ही क्षण भूल का पता चला गया तो मन ही मन उगनी ने अपने को डांटा और पलकें उठाकर भभीखनसिंह की ओर देखा।

वे कान पर जनेऊ लपेटकर भरा लोटा संभाले बाहर निकलनेवाले ही थे। पीछे लौटकर अस्पष्ट शब्दों में सुर्ती भरे होंठों से बोले, "दोठो पापड़ ज़रूर सेंक लेना!"

सिर हिलाकर उगनी ने प्रस्ताव का समर्थन किया। कल रात दाल में नमक ज़्यादा था। आज सवेरे आलू की भुजिया जल गई थी। बर्तन मांजते वक्त पतीले की किनारी से उंगली कट गई थी। नहाकर कपड़े बदल चुकी तो लगा कि दाहिनी बांह पर बूंद-भर भी पानी नहीं डाला।

दरअस्ल उगनी को अपने-आपपर गुस्सा आ रहा था। वह झुंझला रही थी। इन चार-पांच दिनों के अन्दर कम से कम दस बार तो उसकी आंखें अवश्य गीली हुई होंगी। नींद का गाढ़ापन खतम हो गया था। रात को बड़ी देर तक अनाप-शनाप सोचते-सोचते माथे की रग-रग सुस्त हो आती थी और उसके बाद कपार टनकने लगता था, फिर जैसे-तैसे पलकें झिप जाती थीं। मगर यह तो नींद नहीं कही जाएगी!

तख्तपोश के पास स्टूल पड़ा था। स्टूल पर जर्मन सिलवर का भरा लोटा रखा था और उसमें से खंड-आकाश की बड़ी झांकी मिल रही थी।

और, अब उसमें उगनी ने झांका तो अन्दर कामेश्वर मुसकरा रहा था। सहमकर वह दो कदम पीछे हट गई, मानो आग पर पैर पड़े हों—यह कामेश्वर पिछले कई दिनों से उसका पीछा कर रहा है। उगनी को आईने से डर लगने लगा है। भरी बाल्टी की परछाई उसे आतंकित करती है। कमरे के अन्दर पुराना कैलेण्डर टंगा है। एक स्वस्थ, सुन्दर किसान युवक कंधे पर हल संभाले बैलों की जोड़ी को मैदान की ओर ले जा रहा है। उसकी नाक और होंठ कामेश्वर के-से हैं। इधर बार-बार उगनी का जी करता है कि फिलहाल कैलेण्डर को उलट दे।

लौकी चीरने बैठी। यह तूम्बीवाली लौकी थी। जेल के कैदियों में से जाने कौन भगत निकल आया था कि तूम्बीवाली लौकी के बीज मंगवा लिए थे और अबके सब्जियों के इस मौसम में लगता था जेल के बगान हरी-हरी तूम्बियों से भरे पड़े हैं। पहली बार हरी तूम्बी आई थी आज से पन्द्रह-बीस रोज़ पहले। तब मुंह पर आंचल का पल्ला रखके उगनी देर तक हंसती रही थी। आज लेकिन इस तूम्बी को देखकर वह बिलकुल नहीं हंसी। पहली बार उगनी ने हरी तूम्बी देखकर सोचा था कि अच्छा है, जेल के अन्दर भी भगत पैदा हो रहे हैं। चोरों और डकैतों का मन भगवान की ओर मुड़ा है तभी तो उन्होंने तूम्बी के बीज बोए थे। उस रोज़ उगनी ने सपने में देखा था कि कामेश्वर दोनों हाथों में बड़ी-बड़ी पकी तूम्बी लटकाए बढ़ा आ रहा है, बिलकुल पास आकर धीमी आवाज़ में कहता है, "एक गुरु महाराज के लिए है, एक अपने लिए।" यह सपना उगनी को अच्छा नहीं लगा था। आज रात लेकिन इस तरह का सपना शायद उसे अच्छा लगे।

ऐसा न हो कि वह पापड़ सेंकना भूल जाए! भभीखनसिंह महीने में दो बार पापड़ों की गड्डी जेल के अन्दर से टपा लाते थे। सिंके हुए पापड़ तोड़-तोड़कर चबाते समय ठाकुर भभीखनसिंह की आंखें फैल-फैल जाती थीं। मन का हुलास अपनी घरवाली के सामने प्रकट किए बिना उनसे कैसे

रहा जाता—मामूली पापड़ नहीं है, चम्पारन से आया है। पिछली दफा उरद के वेसन का था, अवकी मूंग के वेसन का है। गोलमिर्च पड़ी है इसमें, हींग है···मंगरैला है···

'कपार है···' उगनी उस वाक्य को पहले भी इसी तरह मन ही मन पूरा करती थी। हां, पहले इसमें चुलबुलापन होता था। आज खीज है। मगर पापड़ उसे सेंकने हैं। इतना ही ध्यान रखना है कि झुलस न जाएं। बहुत बड़ी रकम गवन करके पोस्ट आफिस का कोई वावू इस जेल के अन्दर सज़ा काट रहा है। उसीके घर से पापड़ आते थे। पापड़ ही क्यों, अचार, मुरब्बे, अमावट, ताल-मखाना, मेवे-मिठाइयां···ढेर सारी चीज़ें इस बाबू के लिए वाहर से आती रहती हैं। जेलर से लेकर भंगी तक उस पतित का प्रसाद पाते हैं। उगनी इस भाग्यवान कैदी की घरवाली को पिछले महीने देख चुकी थी। गोल- मटोल चेहरेवाली नाटी-सांवली औरत। रेशम की साड़ी। कलाइयों में सोने के चार-चार छल्ले। पान से रंगे हुए पतले होंठ। जेलर ने पति-पत्नी की भेंट के लिए अन्दर ही इन्तज़ाम करवा दिया था। दो घंटे वाद मुसकराती हुई वाहर निकली थी। गेट से काफी इधर नीम की छांह में जीप उसका इन्तज़ार कर रही थी। पुलिस लाइन के क्वार्टरों के दरवाज़े फुसफुसाहट से मुखर थे। लोग उस भागवंती को देख रहे थे और उसकी बातें कर रहे थे। उसने ड्राइवर की जगह बैठे हुए अपने रिश्तेदार युवक से कहा, "बस, छः महीने और रहना है।" और, रंगे हुए होंठों को चांपकर मुसकान पर हावी हो गई थी···उगनी को यकीन ही नहीं आ रहा था कि सोने की चूड़ियोंवाले उन्हीं हाथों ने ये पापड़ बेले होंगे।

कोयला सुलगाकर बाल्टीवाली अंगीठी दरवाज़े से बाहर गली में रख आई थी। सभी ऐसा करते थे। पास-पड़ोस के कमरों में जब बहुत अधिक धुआं भर गया तो अंगीठियों को हंसी आ गई और उनके चेहरे लाल हो उठे। सवेरे और सांझ का यह नज़ारा अब किसीको अखरता नहीं था।

जितने दरवाज़े उतनी अंगीठियां कतारों में बैठकर उनका यों मुसकराना बड़ा ही आकर्षक लगता था।

भभीखनसिंह दिसा-फराकत से देर में लौटे। हाथ धोकर गली के नुक्कड़ पर नल के नीचे नहाने बैठ गए। यह नहाना-धोना ठाकुर का बारहों महीने लगा ही रहता था। जाड़ा हो चाहे गर्मी, भभीखनसिंह अपने बदन पर चार-छः बड़ी बाल्टी ज़रूर उंड़ेलेंगे। नहाने का उनका प्रोग्राम कभी फेल नहीं होता। उनका कहना था, "जिस रोज़ नहाने को नहीं मिलेगा, उसी रोज़ मेरे लिए राम नाम सत्य होगा! ..." उगनी को ठाकुर का ऐसा कहना अच्छा नहीं लगता था। कई बार इसके लिए वह उन्हें डांट चुकी है।

आमने-सामने दो बड़े-बड़े हॉलनुमा घर थे, लम्बी सीखचोंवाले फैले-फैले जंगले उन्हें पिंजड़ों का आकार प्रदान कर रहे थे। अन्दर पक्का फर्श था, ऊपर खपरैल।

ऊंची दीवार के किनारे-किनारे छोटी कोठरियों की कतारें चली गई थीं। बीच-बीच में पीपल और नीम के छायादार दरख्त थे। एक ओर हटकर छोटी दीवारों से घिरा हुआ किचन और उसका आंगन था।

यह ज़िला रतनपुर का जेलखाना था। चारों तरफ लाल ईंटों की ऊंची दीवारें उसे घेरे हुए थीं। पूरब की ओर लम्बा-चौड़ा गेट था। गेट के अन्दर दोनों ओर जेल के दफ्तर थे। ज़रा अन्दर स्टोर रूम, गोदाम आदि थे।

भभीखनसिंह पांच मिनट पहले ही गेट के अन्दर आ गए। छोटे बाबू ने उनसे मखौल किया—"खिज़ाब की डिबिया मिलती है, ले क्यों नहीं आते बाज़ार से?"

इसपर भभीखनसिंह खिलखिलाकर हंसने लगे। हल्की गुदगुदी से पेट फूलने लगा तो बेल्ट की तंगी खली। बोले—"खिज़ाब तो यहां रखा है बाबूजी!"—दिल की ओर उंगली करके इशारा किया—"बाहरवाला रंग पक्का नहीं होता है।"

छोटे बाबू पिन से दांत खोदने लगा। महीन मूंछों में मुसकराता हुआ पुराने जमादार ठाकुर भभीखनसिंह की निगाहों को तोलने लगा। सीधे-

सपाट आदमी मज़ाक-मखौल भी ठिकाने से समझ नहीं पाते और कभी-कभी पासा उल्टा पड़ा जाता है···

"एकाध बार देहात घुमा लाइए घरवाली को। देस-कोस चीन्हेगी तो और भी मन लगेगा। जितना अधिक मन लगेगा आपकी उतनी ही अधिक सेवा करेगी।"

"खूब मन लगता है बाबूजी उसका, बड़ी सेवा करती है। पीहर-ननिहाल का झमेला नहीं रहने से बिलकुल एकमुंहा रुख है···"

यह छोटे बाबू उम्र में भी छोटा था। दाढ़ी सफाचट, मूंछें बिलकुल महीन, होंठों की कगारों पर काली लकीर-सी। भभीखनसिंह का भरा-भरा-सा मुछन्दर चेहरा उसे खुलकर बातें नहीं कहने दे रहा था। भभीखन-सिंह ने शादी नई-नई ज़रूर की थी मगर आयु में छोटे बाबू का बाप जैसा लगता था। यह दूसरी बात थी कि उगनी हू-बहू छोटे बाबू की साली जैसी दीखती थी।

रजिस्टर के अन्दर कलम जमाते हुए छोटे बाबू ने उगनी की शक्ल को अपने ध्यान में जमाया और निगाहों को बिना ऊपर उठाए ही, बोल गया—"एकमुंहा रुख खतरनाक होता है बाबू भभीखनसिंह! आप ऐसा कीजिए कि महीने-दो महीने की छुट्टी लीजिए और उन्हें गंगासागर घुमा लाइए। बेचारी कहां देखेगी कलकत्ता-फलकत्ता!"

बगल में मूठवाली लाठी संभाले भभीखनसिंह दफ्तर से निकलकर अन्दर जेल के भीतरी फाटक की ओर बढ़े। बूटों की आहट से छोटे बाबू को लगा होगा कि वे अपनी घरवाली को गंगासागर नहीं ले जाएंगे। तब उसे वह मुहावरा याद आया होगा—'मन चंगा तो कठौती में गंगा' और वह मुसकराया होगा।

जिसकी ड्यूटी खत्म हो रही थी उससे चाबियों का गुच्छा लिया और सुरती फटकारते हुए आगे बढ़े।

ज़रा आगे बढ़ते ही पाकड़ का वह नौजवान पेड़ सामने आया,

जिसकी छांह में बैठकर कैदी लोग कीर्तन किया करते थे।

साल-दो साल के अन्दर ही उस पेड़ के इर्द-गिर्द सीमेंट का चबूतरा तैयार हो जाएगा। फिर रात की ड्यूटियों में सिपाही उसपर बैठकर अपनी थकान मिटाया करेंगे, दोहों और चौपाइयों से पाकड़ की एक-एक टहनी में पुलकन पैदा होगी। इन दिनों सवेरे की गुलाबी धूप में चम्पारन-वाला वह बाबू तेल की मालिश करवाता है···भभीखनसिंह को लगा कि चलकर पहले उसी बाबू से मिलना चाहिए।

यह भाग्यवान कैदी छोकरा बार्ड में रखा गया। 'बी' डिवीज़न की सारी सुविधाएं तो उसे हासिल थीं ही, अपनी चतुराई के चलते वह 'ए' क्लास की ज़िन्दगी बिता रहा था।

तख्तपोश पर मसहरी टंग गई थी। लालटेन के प्रकाश में समूचा कमरा आलोकित था। आसन पर पालथी मारकर वह खाना खा रहा था।

"नमस्ते बाबू, क्या सब्ज़ी बनी है?"

"आलू-गोभी···" दो शब्द आगे निकले, पीछे निकली खिलखिलाहट। खिलखिलाकर उसका वह हंसना भभीखनसिंह को बड़ा अच्छा लगता था। गोल-मटोल चेहरे की खूबसूरत नली में से होकर हंसी जब बाहर निकलती थी तो सुननेवालों को बड़ी लहरदार मालूम होती थी। इत्मीनान से कश खींचने पर छोटा हुक्का कितना अच्छा गुड़गुड़ाता है।

"भिंडी की भुंजिया भी तो है।" रसोइये ने कहा। यह रसोइया भी कैदी था और बाबू साहब की सेवा में बड़े जमादार की तरफ से नियुक्त था। उसको नौ बजे की छुट्टी मिली हुई थी। सारे कैदी सात बजे हालों के अन्दर आ जाते थे और दो बार गिनती मिलाकर लोहे के जंगलेनुमा दरवाज़ों में ताले लगा दिए जाते थे। बाबू का रसोइया आगे बढ़ आया, रंगीन कागज़ में लिपटी हुई कोई चौकोर टिकिया उसने सिपाही जी की तरफ बढ़ाई।

सिपाही जी ने कागज़ खोलकर देखा और वापस लौटाते हुए हंसे—

"धत्तेरे की, हम क्या कोई छोकरा हैं रे ? हमको पेड़ा काहे थमाता है ?"

रसोइया सकपका गया, कागज़ समेट टिकिया वापस लेकर पीछे हटा। बाबू अनुरोध के स्वर में खी-खी करके उधर से बोला—"मदरास की मिठाई है सिपाहीजी ! ले जाइए, घर में दीजिएगा···"

बायां हाथ मूंछों पर था, दायें हाथ से लाठी ठोककर भभीखनसिंह बोले—"हमको पेड़ा-फेड़ा नहीं चाहिए, बस, महीने में दस ठो पापड़ ज़रूर चाहिए, समझा बाबूजी ?"

खी-खी-खी-खी···बाबूजी को दूसरे का दिल पढ़ने की विद्या बहुत अच्छी तरह आती है। अन्दर ही अन्दर इस भाग्यवान कैदी को उस सीधे सिपाही पर दया आई। मन में कहा—'यह आदमी ज़िन्दगी-भर गरीब बना रहेगा। दूसरों की दी हुई चीजें लेने में इतनी हिचक काहे की ? इसी लेन-देन पर तो दुनिया टिकी है। कोई आपको कुछ दे रहा है, आप नहीं लेते हैं, मुंह टेढ़ा करके उसकी तरफ देखते हैं, इससे उसके दिल को कितनी चोट लगती है ? पापड़ लेते ही हैं, पेड़े में क्या रखा है ? हाथ तो आपका पकता नहीं !'

सिपाहीजी छोकरा वार्ड के दूसरे छोर पर पहुंचे। जेल के अधिकारियों ने हाल ही में बिजली लगवाई है। अब रात की ड्यूटी में डेढ़ सेर की वज़नवाली वह पुरानी लालटेन नहीं ढोना पड़ता है। पहले सन्तरियों के दोनों हाथ फंसे रहते थे।

इस छोर पर मामूली ढंग का कमरा था। इन दिनों उसमें तीन छोकरे थे। एक गिरहकटी में पकड़ा गया था, दूसरा मालगाड़ी से कोयला गिराने में उस्ताद था और तीसरा छिनाल। बूटों की आहट पाते ही पटापट उन्होंने अपनी बीड़ियां बुझा दीं और होशियार हो गए। उनमें से एक इधर आकर सीखचों से सटकर खड़ा हो गया। ओट में से बाहर पहले परछाईं आगे बढ़ी फिर सिपाहीजी नजर आए।

"सलाम सिपाहीजी।"

"यहां क्यों खड़ा है रे ?"

"क्या करें सिपाहीजी, नींद नहीं आती।"

सिपाहीजी भी दरवाज़े का एक डंडा पकड़ के खड़े हो गए। 'पिच' से होंठों की सुर्ती फेंकी। चालीस यूनिट का बल्व सामने जल रहा था। बड़ी-बड़ी मूंछों को बिलकुल करीव पाकर छोकरे ने अपनापन महसूस किया और आहिस्ता से बोला—"बिलकुल ऐसी ही मूंछें मेरे नाना की भी थीं !"

सिपाहीजी की भौंहें कड़ी हो गईं। छोकरे ने कहा—"नहीं सिपाहीजी झूठ नहीं कहता हूं ! अपनी कसम सिपाहीजी, मेरा नाना फौज में रह चुका था···"

फौज की बात से इतना ज़रूर हुआ कि भभीखनसिंह को तसल्ली हुई, उन्होंने छोकरे के बयान को सही मान लिया।

"इसकी महतारी बीमार है, आज ही चिट्ठी आई है।"

बैठे हुए छोकरों में से एक और उठकर इधर आ गया। उसने पहले छोकरे के कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"तेरी मां तो पहले भी बीमार पड़ी थी न ?"

भभीखनसिंह ने इसपर कहा—"ये औरतें बड़ी बीमार पड़ती हैं, इनका कुछ न कुछ लगा रहता है···मेरी भी मां हमेशा बीमार रहती थी। लगता है, घरवाली भी बीमार पड़ेगी। चार दिन से सुस्त नज़र आती है···"

सीखचों से सटकर दो नौजवान खड़े थे। आधी बांह के धारीदार कुरते, वैसी ही धारीदार निकर। एक सांवला, दूसरा खुलते रंग का। एक की आंखें छोटी-छोटी, दूसरे की बड़ी-बड़ी।

भभीखनसिंह ने उनसे पूछा—"तुम्हारे तीसरे साथी को क्या हुआ है ? वह बीमार है क्या ?"

नाखून से नाखून का मैल निकालते हुए दूसरे ने कहा—"उसकी खेत में काम करने की आदत नहीं है सिपाहीजी ! पिछले चार दिनों से उसके

हाथों में कुदाल ही कुदाल रही है। देखिएगा बेचारे का हाथ?"

सुर्ती थूककर सिपाहीजी आगे चल पड़े, कुछ कहा नहीं। पीछे से सांवले छोकरे ने कहा—"परनाम सिपाहीजी!"

प्रणाम की ध्वनि सन्नाटे में डूब गई, जवाब में एक भी शब्द वापस नहीं आया।

आगे जनरल वार्ड था। उधर कोने में ज़नाना वार्ड। कोने के इस ओर मुड़ने में वह कम्पाउण्ड पड़ता था जहां बीमार कैदियों की चिकित्सा होती थी।

राउण्ड में दो सिपाही हुआ करते थे। एक इधर से, दूसरा उधर से। दोनों बीच में जनरल वार्ड के करीब कहीं मिलते थे। रात की ड्यूटी में पहली राउण्ड के वक्त जनरल वार्ड के दोनों हाल गुंजान रहते थे। आधे लेटे, एक-दूसरे से सटे हुए कैदी दुःख-सुख की आपसी बातों में लवलीन देखे जाते थे। दस-बीस सिलेटों पर खड़िया पैंसिलें चलती रहती थीं। कहीं पर 'सारंगा सदावृज,' कहीं पर 'लोरिक उदयभान' और कहीं पर फ़िल्मी धुन। कहीं एक कहानी सुनाता होता, पांच जने उसे घेरकर सुनते होते···

भभीखनसिंह जनरल वार्ड के पहले छोर पर पहुंचे। पीछे से आवाज़ आई—"परनाम बाबा!"

चार कदम पीछे हटकर उन्होंने बड़े जंगले के पास खड़े हुए सामने अन्दर वाले अधेड़ कैदी से पूछा—"क्या समाचार है जी? कब छूट रहे हो? सुना है कि अगले महीने तुम्हारी रिहाई होनेवाली है। चिट्ठी-उट्ठी कोई आई है?"

लोहे की बड़ी-बड़ी सलाखें जमी थीं। पकी मूंछोंवाला एक सांवला ठिगना कैदी दो सलाखों को पकड़े खड़ा था। उसने कहा—"महीना पीछे या महीना बाद छूटना होगा ही। जेल के अन्दर इतने सखा-संघाती हो गए हैं कि बाहर अब मुश्किल से ही जी लगेगा। माल मवेशी भी बथान बदलने से घबराता है। सात साल रह गए न इस दुनिया में?"

लाठी के सहारे खड़े होकर भभीखनसिंह कैदी की बातें सुन रहे थे। सोच रहे थे, ज़रूर यह फिर से वापस जेल के अन्दर आ जाएगा। जेल की भी दुनिया निराली होती है। चार-छः साल अन्दर रह जाओ, बाहर निकलने का मन ही नहीं करेगा...

सिपाहीजी ने हाफपैंट की पाकेट से तम्बाकू की पत्ती का टुकड़ा निकाला, दाहिनी हथेली पर रखकर उसे खोदने लगे तो कैदी ने आहिस्ता से फुसफुसाकर कहा—"बाबा, मेरे लिए भी!"

इस पर सिपाही ने ज़रा-सा टुकड़ा पाकेट से फिर निकाला। इतने में सामने से दूसरा सिपाही इधर बढ़ता हुआ नज़र आया। कैदी ने कहा—"यह लीजिए, तिवारी बाबा भी आ ही गए।"

पास आकर दूसरा सिपाही भी उसी मुद्रा में खड़ा हो गया। भभीखनसिंह ने पूछा—"तुम्हारे लिए भी बनाऊं।"

तिवारी ने निचले होंठ को आगे बढ़ाकर अस्पष्ट शब्दों में कहा—"सुरती अभी-अभी फांकी है।"

"अजी, आज डंडा-बेड़ी किसको पड़ी है? तुम उधर सेल की तरफ गए थे?"

सिपाही रामफल तिवारी ने कहा—"वही बदमशवा है न? रूपनगर वाला। बड़े जमादार को गालियां दी थीं।"

इसपर सामने खड़ा अधेड़ कैदी भभाकर हंसा।

तिवारी ने सुर्ती थूककर कहा—"नम्बरी है। कोई भी कुकर्म उससे छूटा नहीं होगा। एक गंदी मछली समूचे तालाब को खराब करती है। साला, कई बार पकड़ा गया है..."

दांत किटकिटाकर भभीखनसिंह बोले—"डंडा-बेड़ी से क्या होगा, लोहा गरमा के देह दाग दो, तभी खचरा रास्ते पर आएगा..."

कैदी गम्भीर होकर कहने लगा—"बीमारी इलाज चाहती है बाबा! डंडा-बेड़ी से या देह दागने से तो उसका मन और भी ज़िद पकड़ लेगा!"

ज़ोरों से खैनी मसलते हुए भभीखनसिंह ने कहा—"तुम नहीं जानते हो ! तेरहवीं विद्या सबसे बड़ी विद्या है। चार डंडे पड़ेंगे तो होश ठिकाने आ जाएगा। भूत का इलाज पिटाई से बढ़कर और क्या है ? अवगुन भी तो एक किसम का भूत ही है न ?"

लगा कि इसपर सभी सहमत थे। कोई कुछ नहीं बोला। कैदी की हथेली पर चुटकी-भर सुर्ती थमाकर सिपाहीजी आगे बढ़े।

इस अधेड़ कैदी को भभीखनसिंह बहुत मानते थे। ज़मीन की वेदखली के खिलाफ उसने जमकर लड़ाई लड़ी थी। भूदान में मिली हुई ऊबड़-खाबड़ जंगली ज़मीन को उसने खेती के लायक बना लिया तो पुराने भूदानी की लार टपकने लगी। फिर से कहीं अलग रद्दी ज़मीन देकर वे उससे अच्छी ज़मीन छीनना चाहते थे। मार-पीट हुई, गड़ांसा चल गया। भूदानी बाबू के आदमियों में से एक को इतना गहरा घाव लगा कि अस्पताल पहुंचते-पहुंचते बेचारे के प्राण-पखेरू उड़ गए। मुकदमा चला, इसे नौ वर्ष की सज़ा हुई।

भभीखनसिंह के पैर तो ज़रूर आगे बढ़ रहे थे, मन लेकिन उसी कैदी के साथ था। सोच रहे थे—वह नहीं मानेगा। ज़रूरत पड़ी तो फिर गड़ांसा उठा लेगा। भला यह भी कोई कायदे की बात हुई ? आपने ज़मीन रद्दी-फद्दी जानकर विनोबा बाबा को दान कर दी और भूदान कमेटी ने उस ज़मीन को जीतन के हवाले किया। लिखा-पढ़ी पक्की हुई। जीतन ने हड्डीतोड़ मेहनत की और उस ज़मीन को सोने का टुकड़ा बना लिया। तो अब आपके मुंह से लार क्यों टपकती है ? यह आदत बहुत खराब है बाबू साहब, रद्दी-फद्दी औरों के लिए, माल-टाल अपने लिए···बड़े लोगों की नीयत इतनी छोटी क्यों होती है ?

दाहिने पैर का बूट रोड़े में टकराया तो सिपाहीजी का ध्यान भंग हुआ। ठेकेदार के लिए एक वज़नदार गाली मुंह से निकली और सुर्ती थूककर बेल्ट को फिर से एडजस्ट किया। बड़ी नफरत है भभीखनसिंह

को ठेकेदारों के प्रति। उनकी समझ में नहीं आता कि सरकार आंख-कान मूंदकर कैसे यह सब बर्दाश्त करती है। जेल के अन्दर सभी रास्ते कंकरीट-वाले नहीं हैं। जनरल वार्ड से ज़नाना वार्ड की तरफ जो रास्ता गया है उसकी हालत अच्छी नहीं है। अस्पताल का पलस्तर तीन ही साल के अन्दर झड़ने लगा है। बारह हिस्सा बालू और चार हिस्सा सीमेंट मिलाएगा तो यही न होगा!...

ज़नाना वार्ड में छोटे-छोटे तीन कमरे थे। पहला खाली था, बाकी कमरों में पांच-छः औरतें थीं। इन महिला कैदियों में से भभीखनसिंह की दिलचस्पी एक ही तरफ थी।

वह अपने पति की हत्या करके आई थी। सेण्ट्रल जेल भेजी जाने-वाली थी। पतली-छरहरी। सांवली। बड़ी-बड़ी आंखें। नुकीली नाक। जिसका ऐसा लुभावना चेहरा होगा, कैसे वह किसी मर्द के प्राण लेगी? भभीखनसिंह ने छोटे बाबू से पूछकर मालूम किया था कि वह अपने पति की हत्या के अपराध में दस साल जेल काटेगी। औरत होने का ही फायदा मिला है कि फांसी पर नहीं लटकी।

सिपाहीजी ने कई बार कोशिश की मगर वह उनकी तरफ रुख करके ठिकाने से कभी बैठी तक नहीं। शायद कोई छोकरा सिपाही ड्यूटी में आता और रात का वक्त होता तो उसके सामने खुलती। मगर नहीं, उसके सामने भी नहीं खुलती शायद। क्या कभी एक बार भी पलकें उठाकर इसने भभीखनसिंह की ओर देखा है? क्या कभी जंगले से सटकर सीखचों के सहारे खड़ी हुई है?

उम्र पच्चीस-छब्बीस से ज़्यादा तो क्या रही होगी! लेकिन उम्र से क्या आता-जाता है? पहले मिज़ाज का तो पता चले...सिपाहीजी ने अपने को संभाला और अगले कमरों के छोर तक जाकर वापस आए और पहले कमरे के सामने ठिठककर खड़े हो गए...आहिस्ता से सीखचों-वाले दरवाज़े के पास आ गए। मोटी, लम्बी दो सलाखों को दोनों हाथों

से थामे और लाठी को बगल में दबाए खड़े हुए। सामने ऊपर चालीस यूनिट का वैसा ही बल्ब प्रकाश बिखेर रहा था। भभीखनसिंह ने अपनी परछाई पर निगाहें जमा दीं। पगड़ी की झालरें फटी-फटी बारीक रेखाओं में अच्छी तरह प्रतिबिम्बित थीं···

(यहीं पहली बार मैंने उगनी को देखा था। दो हफ्ते बाद रात की ड्यूटी मिली थी। चर्चा लेकिन इन कानों तक पहले ही पहुंच गई थी कि कोई खूबसूरत लड़की ज़नाना वार्ड में आई है···महीने-भर की सादी सज़ा थी। पन्द्रह-सोलह दिन गुज़र चुके थे। चार-छः रोज़ और गुज़र गए मगर उगनी ने मेरी तरफ नहीं देखा। इस ओर पहली दीवार से सटकर लेटी रहती थी। छत की कड़ियों को टुकर-टुकर देखने में जाने मन को कौन-सा स्वाद मिलता था।

(ज़नाना वार्ड की कैदी महिला वार्डन ने बतलाया था···वह भाग के आई है। जिसके साथ भागी थी उसको नौ महीने की सज़ा देकर गंगा के उस पार किसी जेल में भेज दिया गया है। बेचारी घर तो वापस जा सकती नहीं, रिहाई के बाद जाने कहां-कहां भटकना पड़ेगा!

(मेरे मन ने तभी कहा था, भटकना क्यों पड़ेगा? जब तक चाहेगी, भभीखनसिंह अपने पास रहने देंगे···बेटी-भतीजी नहीं रहती है साथ?

(लेकिन उगनी की ठसक भी कमाल की थी। हिकारत की निगाह से एक बार देख लिया होता तो उसकी वह सूरत ज़िन्दगी-भर मैं नहीं भूलता।

(आम तौर से जेलों पर ज़नाना वार्ड की अन्दरूनी देखभाल की ज़िम्मे-वारी महिला क़ैदी वार्डरों की रहती है लेकिन यह तो बहुत छोटा ज़िला है न! इसकी जेल भी बहुत छोटी है। कभी-कभी ज़नाना वार्ड के अन्दर गिलहरियों के अलावा और कोई नहीं दीखता। कभी-कभी दो ही एक औरत सज़ा काट रही होती है। कभी-कभी देख-रेख के लिए ज़नाना वार्डर नहीं भी होती है। ज़नाना-मर्दाना वार्डों के अलगाव का यह खट-

राग सेण्ट्रल जेलों में तो निभ जाता है, छोटी जेलों के अधिकारी इस झमेले को संभाल नहीं पाते। नतीजा होता है यही कि मेरे जैसे भगत सिपाही को ज़नाना कैदियों की देखभाल के लिए आगे कर देते हैं। आगे चलकर इस तरह की ड्यूटी के लिए किसी भभीखनसिंह की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। सारा काम कुत्ता संभाल लेगा। फर्श, फर्नीचर और कपड़ा सूंघकर सुसरा अपराधी को पकड़ लेता है। जेल के पहरे में क्या रखा है?

(उगनी अन्दर थी तो महिला कैदी वार्डर हफ्ते-भर के लिए बीमार पड़ी, उसे दस-बारह रोज़ अस्पताली वार्ड में रहना पड़ा। उसने पहले ही कहा था: सिपाहीजी, यह जो नई छोकरी आई है उसका आगे-पीछे कोई नहीं है। बिलकुल उड़ाऊ माल है, जिसकी डाल में घोंसला होगा उसी पेड़ के हवाले कर देगी अपने को···तभी से मेरे मन में आशा का अंकुर उगा।

(रात के बाद रात गुज़रती गई और मेरे अरमान बढ़ते गए। उगनी ने अपना रुख नहीं बदला। पीछे मेरी तरफ एकाध बार देख ज़रूर लेती थी, बोलती नहीं थी लेकिन। दरअस्ल यह उगनी का कसूर नहीं था, उम्र का कसूर था। अकड़ नहीं हो तो जवानी क्या? इस उम्र में कब, क्यों और कहां तुम किसीपर रंज हो उठोगे या खुश हो जाओगे, बतलाना मुश्किल है। जवानी खुद ही अपने-आपमें बहुत बड़ी पूंजी होती है। इस पूंजी का मालिक उमंग में आकर किसीके पीछे अपने को लुटा भी दे सकता है, और उसे धक्के देकर निकाल भी सकता है। जी में आएगा तो तुमको अपनेकंधों पर बैठाकर नाचता फिरेगा, जी में आएगा तो तुमको छुरा मार देगा··· भई, मुझको तो जवान छोकरों और छोकरियों से बड़ा डर लगता है···

सर्राटे से दो बड़ी चमगादड़ें सीखचों से होकर बाहर निकल गईं। सिपाहीजी को लगा, अपने घरवाला को यमलोक पहुंचाकर कैद की सज़ा भुगतनेवाली वह सांवली औरत एकटक छत की ओर देख रही है। शायद उसी डायन की पैनी निगाहों से घबड़ाकर चमगादड़ें भागी हैं! अच्छा है कि वह मेरी ओर कभी न देखे।

लाठी का लोहे से मढ़ा हुआ वज़नदार निचला छोर ठन् से बोला और लाठी के साथ भभीखनसिंह आगे बढ़ गए। लाठी की उठती-पड़ती ठनकारें बूटों की आहट में मिलकर ताल देने लगीं तो उधर से दूसरे सिपाही की लाठी भी ठनक उठी। ताल में बंधी हुई ठनकारों के जवाब में बाहर जेलर का कुत्ता गुर्रा उठा।

दो राउण्ड लगाकर दोनों सिपाही अस्पताली वार्ड के पास उस चबूतरे पर बैठ गए, जहां बाहर के बुड्ढ़ पंडितजी आकर महीने में दो बार रामायण बांचते थे। जनरल वार्ड में कोई बिरहा गा रहा था। ऊंची दीवार के उस पार मैदान में लकड़ी चीरने का कारखाना था। बिजली की मशीन पर साखू का मोटा और लम्बा लट्ठ चीरा जा रहा है, आरी की सर्राहट बतला रही थी।

उजले झाग से भरा हुआ आधा चेहरा। शीशे के अन्दर आप ही अपने को देखना व्यक्ति के लिए भारी कौतुक होता है। मगर निगाहों में गम्भी-रता आकर इस तरह जम गई है कि रगों का तनाव कम नहीं हो रहा था। और वक्त होता तो वह अब तक कई बार मुसकरा चुका होता। भौंहें कड़ी करके, नथनों को फुलाके खुद ही अपने को चिढ़ाया होता। अभी लेकिन अच्छी तरह आईने की ओर देख भी कहां रहा है!

पिछले पांच-सात दिनों के अंदर कामेश्वर ने मूंछें उगा ली थीं। उगनी को बिना मूंछों का चेहरा अच्छा नहीं लगता था। इस समय शेव करते करते बार-बार उगनी आ रही थी निगाहों में। लगता था, छोटा-सा चौकोर आईना उगनी के सुन्दर मुखमंडल के प्रति न्याय नहीं कर सकेगा। बार-बार कामेश्वर की पलकें बन्द होती थीं और अंदर की आंखों के सामने वही प्रफुल्ल चेहरा आ जाता था···

जल्दी-जल्दी शेव करके कामेश्वर धर्मशाला के कुएं पर से नहा आया। चारों ओर कमरे, बीच में बहुत बड़ा आंगन। आड़े-तिरछे पतले तार टंगे थे मुसाफिरों की सुविधा के लिए कि वे आसानी से कपड़े फैलाएं। कामेश्वर ने गीली धोती फैलाई। तौलिया फैलाते वक्त नीचे अपनी परछाईं पर दृष्टि पड़ी, लगा कि अब वह लम्बा नहीं रह गया।

परछाईं पर पैर रखता हुआ आगे बढ़ आया। भूख लग आई थी।

धर्मशाला के बरामदों पर चारों ओर नये कलेण्डर टंग गए थे।

दिसम्बर अन्त था न ? इस विज्ञापनबाज़ी के लिए छोटी हैसियतवाले ट्रेवलिंग एजेण्टों ने धर्मशाला के निचले कर्मचारी को कैसे राज़ी कर लिया था, यह सोचकर कामेश्वर को फिर हंसी आ गई। इन्हीं कलेंडरों में एक था 'बापू राष्ट्रीय भोजनालय' वाला तीन रंगा कैलेंडर। हाथ में लड्डू लिए हुए बाल-गोपाल घुटनों के बल आगे सरकने की मुद्रा में यशोदाजी को देख रहे थे। चित्र ही ऐसा था कि भूखे को और भी भूख लग आती थी। स्थानीय होटलवाले इस कैलेण्डर के नीचे हाथ की लिखावट में ही एक वाक्य था—'बिलकुल करीब है।'

बिलकुल करीब है, तो फिर वहीं चलना चाहिए—कामेश्वर ने तय किया। तैंतीस नम्बरवाले अपने कमरे में आकर कपड़े बदले। बालों पर कंघी फेरी। झूलते बटनवाला वह कुरता खूंटी से टंगा था। इसे देखकर उगनी की आंखें कैसे छलक आई थीं ! आज वह दूसरा कुरता पहनेगा। धोती नहीं, पायजामा निकालेगा। मंगलवार है न ? शाम को आज वह भी हनुमानजी का दर्शन करने जाएगा। उगनी ने कहा था, भीड़ होती है दर्शन करनेवालों की। कामेश्वर लेकिन भीड़ में शामिल नहीं होगा। अलग हटकर बैठेगा, बगीची के अन्दर कलवाले पत्थर पर। अभी तो ग्यारह भी नहीं बजे हैं। अभी से क्यों हनुमानजी कामेश्वर को याद आ रहे हैं ?

धर्मशाला से निकलकर वह बाहर सड़क पर आ गया। पानवाले से पूछकर उस होटल का पता लगाया; सचमुच करीब था।

सड़क के किनारे छोटा सा खपरैल का मकान। अंदर ज़रूर काफी जगह होगी। साइनबोर्ड चटकीला नहीं था लेकिन साफ था। नीचे ब्रैकेट में था 'केवल हिन्दुओं के लिए'। प्रवेश करने पर भीतरी दीवार ने इसलिए ध्यान आकृष्ट किया कि सफेदी पर नीली स्याही में तीन शब्द चमक रहे थे—'पवित्र, पुराना, निरामिष' आगे बढ़ने पर गलियारा मिला। छोर पर सचमुच ही काफी बड़ा आंगन था, चारों ओर खपरैल कमरे थे। बरा-मदों पर पीढ़े फैले थे, बीसों हाथ यांत्रिक मुस्तैदी से मुखों तक पहुंच रहे

थे। पीतल की थालियों में लगता था, चमेली के सफेद-सफेद फूल खिले पड़े हैं। खुशबू इस रूप को महिमा प्रदान कर रही थी।

जूते खोलकर कामेश्वर खाली पीढ़े की ओर बढ़ा। बैठने पर महसूस किया कि यहां बेचारे बापू को खींचने की कोई ज़रूरत नहीं थी। बापू तो दाल-भात इस तरह बैठकर शायद ही कभी खाते हों। चित्र में बजरंगबली को देखकर उसने अपनी बांहों की ओर निगाह डाली—बचपन में दूध-दही काफी मिला था, बनता तो देह ज़रूर बन गई होती।

और कुछ स्वादिष्ठ नहीं था, चावल अवश्य खुशबूदार थे। अलग से दही मंगवाकर पेट-पूजा की पूर्णाहुति करनी पड़ी। सड़क पर वापस आकर पान की दुकान के सामने दांत कुरेदते हुए कामेश्वर ने मन ही मन गाली दी—साले ने समूचा रुपया ले लिया, अब मैं अगर उस कैलेण्डर को फाड़ दूं जाकर?

रात का खाना पंजाबी होटल में खाया था, बारह आने में कितना अच्छा खिलाया था! तन्दूर की रोटियां तीन से ज़्यादा आप ले भी तो नहीं सकते। पुजारी बाबा ने मटर-भर भंग दी थी, सारी रात सोता रहा था कामेश्वर। स्वप्न-सुख से वंचित रहने का खेद उसे अवश्य हुआ। अक्सर सपने हमें अच्छे लगते हैं। वर्ष-भर की तीन सौ पैंसठ रातें अगर बिना सपनों की गुज़र जाएं तो कैसा लगेगा? ऐसा नहीं लगेगा कि समूचा वर्ष फीका गया? शाम को भी पुजारी बाबा उसे भंग देना चाहेंगे लेकिन आज वह नहीं लेगा। आज वह रात-भर सपने देखेगा। कल उसने ठेठ दुपहरिया में फिल्म देखी थी। रील लंबी थी, तीन घंटे से दस-पन्द्रह मिनट ज़्यादा ही वक्त गया होगा। पर आज रात जो छायाचित्र देखने को मिलेंगे उनकी रील दुगनी लम्बी होगी। यह कोई सेन्सर की हुई, नपी-तुली, कटी-छंटी फिल्म नहीं होगी, इसमें ढेर सारे इण्टरवल होंगे। पात्रों की भीड़ नहीं होगी एक ही हीरोइन रहेगी। साइडरोल में महिलाओं के और चेहरे हो सकते हैं। ज़रूरी नहीं है कि सुखान्त ही हो यह फिल्म। अंत में रुलाई से भी

नींद टूट सकती है—

अपनी इस कल्पना पर कामेश्वर आप ही मुसकरा उठा और डाकखाने की ओर चला गया।

कामेश्वर की शादी बीस वर्ष की उम्र में हुई थी और छः महीने बाद ही बहू का देहान्त हो गया था। बेचारी टाइफाइड का शिकार हुई। पढ़ाई छूट जाने से उन दिनों मन यूं ही उचटा-उचटा-सा रहता था। पत्नी की मृत्यु ने उस उचाट को और गहरा बना दिया। घरवाले दूसरी, तीसरी, चौथी और पांचवीं लड़कियों का लेखा-जोखा लेने लगे। उन लड़कियों के पिता और चाचा घिराव डालने लगे। परिवार के और पास-पड़ोस के बड़े-बूढ़े कई गुनी अधिक दिलचस्पी लेने लगे।

यह खींच-तान चार-छः साल तक चली होगी लेकिन कामेश्वर ने किसी को अपनी पीठ पर हाथ नहीं रखने दिया।

जिसकी मांग में सिन्दूर भरा, वह तरुणी क्या बरसों तक दिल-दिमाग पर हावी रही ?

अपनी रुचि की क्या कोई और लड़की कामेश्वर के हृदय में प्रवेश नहीं पा सकी थी ?

छोटा-बड़ा ऐसा कोई संकल्प तो नहीं था, जिसके चलते कुछ अर्से तक वह अकेला रहना चाहता हो ?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी।

पत्नी की मृत्यु के बाद शायद ही कभी उसने शोक प्रदर्शन का अभिनय किया हो। स्नेह स्वभाव की सास मिली थी। उसने कहलवाया था—"बबुआ, आगे भी तुम मुझे अपनी अम्मा ही समझना। विधाता से तुम दोनों की जोड़ी देखी नहीं गई, इसमें मेरा क्या कसूर ? कसूर तो मेरा अब होगा अगर सामने बैठाकर उसी तरह पंखा न झला करूं तुमको !" अलावा अम्माजी के, एक सलहज थी और दो सहेलियां। उनके भी लाड़-प्यार का रंग कभी फीका नहीं पड़ा। तीसरे, परिवार की एक बुढ़िया ने

छोटी साली से व्याह के प्रस्ताव का इंगित कामेश्वर तक पहुंचवाना चाहा। बात बीच में ही काट दी गई इसलिए कि अम्माजी को पसन्द नहीं था। बड़ी साली ने तो साफ-साफ कह दिया—"एक प्रतिमा की जगह दूसरी प्रतिमा मूर्तिकार ही बैठाते हैं। जीजा और साली के रिश्ते की भी आखिर कोई मर्यादा होती है न? हमारी बहन का खाली आसन किसी और लड़की के लिए मुबारक हो···" कामेश्वर को उन लोगों का यह रुख अच्छा लगा था। वह उनसे वर्ष में एकाध बार मिल आता था।

छोटी भाभी कामेश्र को बहुत मानती थी। इतना अधिक मानती थी कि बड़ी भाभी ने एक बार कहा था—"दोनों पिछले जन्म की सहेलियां हैं। चांदनी रात में आंगन के फर्श पर चाक से लकीरें खींचकर 'घर' बनाते हैं और घंटों 'पचीसी' खेलते हैं। जाने कौड़ी खेलने में इन्हें क्या मज़ा आता है!" बड़ी भाभी की इस बात पर मां खिलखिलाकर हंसती थीं। छोटी भाभी अपने लाड़ले देवर को बेहद प्यार देती थी, ठीक है। लेकिन उसे अपनी सीमाओं का खयाल हमेशा रहा।

मैट्रिक में फेल होने के बाद उसने तय किया था कि खेती-किसानी में भिड़ जाएगा। मैट्रिक में क्या रखा है? बाप-दादों के खेत हैं डेढ़ सौ बीघे। आमों के बाग हैं। साखू, महुआ, शीशम, जामुन, बड़हल, तून के जंगल हैं। बड़े-बड़े दो पोखर हैं, जिनसे हर साल हज़ारों की मछलियां निकलती हैं। बाबूजी और चाचाजी को भी तो आखिर कोई असिस्टैण्ट चाहिए न? साठ के हो चुके हैं, मन ही मन गालियां देते होंगे—'स्कूल-कालेज में पढ़ाओ तो हमेशा के लिए हाथ से निकल जाते हैं। माया नहीं, मोह नहीं, रत्ती-भर ममता नहीं! इस ज़माने के लिखे-पढ़े लड़के चांडाल होते हैं। मर जाओ तो मुंह में आग देने के लिए पटना, राची तार ठोको। दो-दो दिन तक लाश पड़ी रहे और मक्खियों का भोज हो···' इन स्थितियों की कल्पना कामेश्वर ने बार-बार की थी और मन ही मन संकल्प लिया था कि परिवार के बूढ़ों का बोझा उठाने लायक अपने को बनाएगा।

पड़ोस के गांव में एक लायब्रेरी थी। वहां हज़ारों की संख्या में नये-पुराने उपन्यास तो थे ही, पांच-सात पत्रिकाएं भी आती थीं। वहीं, करीब में हाई स्कूल में था। आठवीं से ही कामेश्वर को लायब्रेरी का चस्का लगा। मैट्रिक की परीक्षा में असफल होने का दायित्व शायद इस पुस्तकालय का भी रहा हो। 'शायद' इसलिए कि कामेश्वर का कहना था — मां तीन महीने बीमार रहीं और चाचाजी तीर्थयात्रा के लिए निकल गए थे। बाबूजी अकेले थे। कैसे देखा जाता उससे ? खेती-गृहस्थी के झमेले उसकी पढ़ाई चाट गए···मौका मिलते ही चट से लायब्रेरी के अन्दर घुस जाना और अलमारी की ओट में स्टूल पर बैठकर घंटों गुज़ार देना। उपन्यास और उपन्यास और उपन्यास। 'आर्यावर्त' और 'आज' और 'योगी' और साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', 'नवनीत' और 'सरस्वती' और 'नई धारा'··· 'बालक', 'किशोर' और 'चन्दामामा' और 'धर्मयुग'···एक और दुनिया कामेश्वर के अन्दर आबाद हो गई थी, किताबी पात्रों और घटनाओं की दुनिया। अन्दरवाला यह संसार कामेश्वर के लिए इतना प्रिय और ऐसा स्वाभाविक हो उठा कि परीक्षा की अपनी विफलता का दायित्व लायब्रेरी पर वह डाल ही नहीं सकता था।

कल्पना-जगत् में किस प्रकार गांव की एक बालविधवा आ गई और धीरे-धीरे उसका अस्तित्व किस प्रकार कामेश्वर के लिए परम सत्य हो उठा !

किस प्रकार उस असहाय युवती का मूक क्रन्दन कामेश्वर के मन को मथने लगा और किस प्रकार और संकल्प उसे लेना पड़ा !

किस प्रकार सनातन रूढ़ियों की चट्टान एक सीधे-सादे ग्रामीण युवक की सहज सदिच्छाओं का सदा के लिए अन्त कर देना चाहती थी और किस प्रकार कामेश्वर ने उसका प्रतिरोध किया !

किस प्रकार बुज़ुर्गों ने एक मामूली घटना को अपनी मूंछों का सवाल बना लिया और किस प्रकार कामेश्वर को यह चैलेंज कबूल करना पड़ा !

उग्रतारा असल नाम था, मगर इस नाम से कभी किसीने उसको पुकारा नहीं। कम से कम कामेश्वर के कानों ने तो नहीं सुना। ठीक है, सभी नाम ऐसे कहां होते हैं जो हमारी जीभों पर आसानी से फिसल सकें। उगनी, कैसा प्यारा और छोटा-सा नाम है। शक्ल-सूरत सामने न हो नाम ही नाम आपने सुन लिया हो, तो भी क्या कानों को गुदगुदी नहीं लगेगी ?

कामेश्वर ने उगनी को देखा तो पहले भी कई बार था लेकिन दूर-दूर से, पास आने का कोई सवाल ही नहीं उठा। सुन्दरपुर-मढ़िया में एक नहीं, पच्चीस उगनियां थीं। नौजवान आपस में उनकी चर्चा करते थे। हर लड़की किसी न किसी नौजवान की बहन थी, हर नौजवान किसी न किसी उगनी का भाई था। उनके सुख-दुःख आपस में गुंथे थे। एक के बदन पर चोट पड़ती थी तो दूसरे के बदन पर निशान उभर आते थे। इसका दिल दुखता था तो उसकी आंखें गीली हो जाती थीं। उसका जी अघाता था तो इसके रोयें पुलकित होते थे। उगनी को अच्छा दूल्हा मिला था, नौजवानों को बड़ी खुशी हुई थी। स्टीमर-दुर्घटना में उगनी के दूल्हे का देहान्त हुआ तो सुन्दरपुर-मढ़िया के अनेक तरुण कई दिनों तक कराहते रहे और उस आकस्मिकता को उन्होंने गांव के लिए किसी भारी असगुन की काली छाया घोषित किया।

कामेश्वर को भली भांति याद है, कैसे उगनी के दुर्भाग्य की बातें करते-करते तीन जने जाड़े की उस काली रात में दो बजे तक जागते रह गए थे। कैसे नर्मदेश्वर की भाभी ने उगनी के भविष्य के बारे में विधायक सुझाव दिए थे। कैसे संकल्प का एक नन्हा-सा बीज कामेश्वर के हृदय में तभी पड़ा था···

नर्मदेश्वर की भाभी बड़ी दिलेर नवयुवती थी। ज्यादा तो नहीं, मैट्रिक तक पढ़ी-लिखी थी। उसके चाचा राजनीतिक पार्टी के अच्छे कार्यकर्ता थे। उन्होंने अपनी लाड़ली भतीजी के अन्दर युगोचित संस्कार काफी मात्रा

में डाले थे। इस नवेली भाभी की बातें अर्से तक कामेश्वर के कानों में कुल-बुलाती रहीं। भाभी ने दीप्त स्वर में कहा—"सुन्दरपुर-मढ़िया के नौजवान गोबर हैं, ऐसा गोबर जिसपर उंगलियां रखो तो काठ बनेंगे, कंडे नहीं!" नर्मदेश्वर और कामेश्वर ने पलकें झुकाकर पैनी बात की वह चाबुक झेली थी। नर्मदेश्वर ने थोड़ी देर बाद पूछ लिया—"तो भाभी, तुम्हीं बताओ न क्या किया जाए? इन बड़े-बूढ़ों से कैसे निबटा जाए?"

नर्मदेश्वर की भाभी चाबुक फटकारकर अपने देवर और उसके साथियों की चेतना को झकझोर देती थी किन्तु अपना कोई निर्णय उन-पर ठोकती नहीं थी। बड़ी उम्र के दो छिनाल पुरुषों की करतूतों पर प्रकाश डालते समय नर्मदेश्वर एक बार बोला था—"भाभी, पिस्तौल का लाइसेंस लेना चाहता हूं।" इसपर वह खिलखिलाकर हंसी थी। रुककर कहा था—"पिस्तौल क्या करोगे? छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगा। स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएंगे तभी व्यभिचार घटेगा। देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज़्यादा संकट उन्हींकी तरफ से आता है। दूसरा संकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति। इन संकटों का मुका-बला हम पिस्तौल से नहीं कर सकते···"

एक बार उसने कामेश्वर से अकेले में पूछ लिया—"कब तक अकेले रहिएगा बाबू साहेब? शादी नहीं कीजिएगा? अभी तो खैर दस वर्ष जवानी की उमंग में दूसरी शादी न करने का हठ भी निभा लीजिएगा, आगे चलकर आपके साथ भी वही मुहावरा जुड़ेगा कि गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज़···झूठ कहती हूं?"

उगनी के बारे में कभी उसने कामेश्वर से यह नहीं कहा कि तुम विधुर हो और वह विधवा, दोनों एक-दूसरे को अपना लो। अर्से तक वह पसोपेश में रही। कामेश्वर का दिल थाहती रही, उसके साहस का अन्दाज़

लेती रही। उगनी नई विधवा थी, उसकी मां पुरानी विधवा थी। कहते हैं, दादी भी विधवा थी। कैसे वैधव्य का इतना लम्बा अभिशाप उसके खानदान पर पड़ा था, यह रहस्य और आश्चर्य की बात थी। मढ़िया-सुन्दरपुर की खास घटनाओं में से एक यह भी थी। एक-एक वहू एक-एक दामाद, जो गांव के भीतरी जीवन में आके शामिल होते थे, उनके कानों तक यह विशेष घटना पहुंच ही जाती थी।

सौन्दर्य से उगनी के वैधव्य का अभिशाप और भी गहन हो उठा था। नर्मदेश्वर की भाभी को जब मालूम हुआ कि लड़की ककहरा भी मुश्किल से पहचानती है तो उसे भारी परिताप हुआ। उगनी की मां से अनुमति लेकर उसने उसके लिए वर्णमाला की रंगीन चार्ट मंगवाई।

यह भाभी उगनी की ही नहीं बहुत सारी बहुओं-बेटियों की गुरुआइन थी। चौपाल पर बातूनी होंठ नर्मदेश्वर की भाभी को खीझ के मारे विधायिकाजी कहा करते। उसने लेकिन इस उपाधि को मुस्करा के ही अपना लिया था। वह ऐसी विधायिका थी जिसे कभी किसीके सामने शपथ नहीं लेनी पड़ी। उसने एक बार खिलखिलाकर कहा था—"मैंने जिसके सामने शपथ ली है वह यहां बैठा है···" उसने माथे पर उंगली ठोक ली थी। उसकी यह मुद्रा देखकर नर्मदेश्वर और कामेश्वर हंसते-हंसते लोट-पोट हो गए थे।

उगनी ज़्यादा नहीं लिख-पढ़ सकी। दस लाइन का खत लिखने में उसे एक घंटा लगता है। इसका भी श्रेय उन्हीं भाभी साहिबा को है। कामेश्वर का रोम-रोम इसके लिए भाभी का कृतज्ञ रहेगा···

भाभी के प्रति कृतज्ञ रहने के लिए क्या यही एक उपकार उसे याद आता है?

वस्तुतः भाभी के उपकार आधा दर्जन से कम तो क्या होंगे।

उगनी के मन से ग्लानि को धो-पोंछकर साफ कर देना क्या मामूली उपकार था? मां को समझा-बुझाकर लड़की को दूसरी शादी के लिए

तैयार करना क्या मामूली उपकार था ? पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के संयुक्त मोर्चे में दरार डालना मामूली उपकार था ? स्वप्नदर्शी, भावुक किशोर मन को संकल्पशील दृढ़ युवक-मन में बदल देना क्या मामूली उपकार था ?…

नर्मदेश्वर की भाभी घंटों कामेश्वर के साथ रहीं—मन में छाई रहीं। डाकखाने के अन्दर, काउण्टर से ज़रा हटकर उसने तीन-चार चिट्ठियां लिखीं। लगता था, बीच-बीच में भाभी चिट्ठी पढ़ती जाती हैं। लगता था, छब्बीस वर्ष की उस भरपूर मुखर युवती का खिलखिलाना कानों को बार-बार गुदगुदा रहा है और बार-बार हिज्जे की गलतियां हो रही हैं।

(दुहाई भाभी, अभी परेशान मत करो !

[मैं कहां कुछ कर रही हूं ?

(अभी एक चिट्ठी मुझे और लिखनी है…

[किसको लिखना है अब और ?

(तुम्हारे लाड़ले देवर को।

[तुम क्या मेरे कम लाड़ले हो ?

(देखो भाभी, मुझसे उड़ो मत !

"क्या कर रहे हैं इतनी देर से यहां ?"

"ओ, आप !"

कामेश्वर ने युवक की ओर मुस्कराकर देखा। वह कमरा नं० ३४ का मुसाफिर था, तार देने आया हुआ था।

मन ही मन भाभी को प्रणाम करके कामेश्वर युवक के साथ पोस्ट-आफिस से बाहर निकल आया।

अभी-अभी घड़ियाल को दस बार ठोका गया था। जाड़े की रात। दस बजते-बजते सन्नाटा हो गया था। शहर के बाहर का यह इलाका दिन में भी गुंजान नहीं रहता था। इधर न तो रिहायशी मुहल्ले थे, न बाज़ार। हां, बस के अड्डे से ज़रा हटकर चार-पांच मामूली दुकानें ज़रूर थीं। तीन दुकानें चाय की। दो होटल। पान की एक दुकान। कोयले का डिपो। दिन के वक्त एक मोची आके बैठ जाता था। यह सब लेकिन पिछले तीन वर्षों में ही हुआ था। जेल के मेन गेट से दाहिनी तरफ, दो फर्लांग हटकर बसों का यह अड्डा था। बसें ज़्यादातर दिन को ही आती-जाती थीं, रात के समय अड्डा उदास रहता था। अड्डे की मुखरता या उदासी का कोई असर जेल-गेट तक फटक नहीं पाता था। हां, जेल की पिछली दीवार के उस पार, मैदान में लकड़ी का एक कारखाना ज़रूर था, उससे चिराई की आवाज़ रात के सन्नाटे को चीरती हुई गेट के इधर तक पहुंचती थी।

उगनी ने उठकर आधा गिलास पानी पिया। तबीयत नहीं हुई कि स्विच ऑन करे। हाल-हाल इन क्वार्टरों में बिजली लगी थी। छिपकली की आवाज़ पर स्विच ऑन करने में आलस नहीं अनुभव होता था। बच्चों और औरतों में बिजली की रोशनी के प्रति अपार उत्साह था। उगनी लेकिन अपवाद थी। यूं भी वह बिजली कम जलाती थी और आज तो उसका जी ही इन्कार कर रहा था।

बल्ब भक् से जल उठेगा, आईने में अपनी शक्ल खुद को ही चिढ़ाएगी।

कैलेण्डरवाला किसान युवक शायद मुस्करा उठे। मोरछाप नीले किनारों-वाली गुलाबी साड़ी शायद सुलग उठे। आले में रखी बोतल का साफ तेल शायद बुलबुले छोड़ने लगे···नहीं, वह स्विच ऑन नहीं करेगी···

चौथाई गिलास पानी लेकर उसने दुबारा पिया। पीनेवाला पानी बाहर बरामदे के कोने में बाल्टी के अन्दर ढका रहता था। वहीं आले पर पीतल के दो गिलास पड़े रहते थे। पीतल का एक बड़ा लोटा, जिसे भभीखनसिंह ने अयोध्या से मंगवाया था ; जर्मन सिल्वर का छोटा-सा दूसरा लोटा, जिसे उगनी ने किसी फेरीवाले से खरीदा था···रात के अंधेरे में और भी बर्तन चमक रहे थे मगर इतने नहीं कि उस चमक में अपनी परछाईं नज़र आए।

चार कदम चलकर वह आंगन के छोर तक गई। वापसी में चौखट से दाहिने पैर का अंगूठा टकरा गया। ठेस अधिक नहीं लगी। फिर भी दर्द ने थोड़ी देर के लिए उसके मन को दूसरी ओर मोड़ दिया। अब वह स्विच ऑन करेगी।

अन्दर-बाहर दो ही बल्ब थे। अन्दरवाला पचीस यूनिट का लट्टू जल उठा तो उगनी ने दाहिने पैर को ऊपर तख्तपोश पर टिका दिया और अंगूठे को देखने लगी। नाखून की बगल में पहली पोर से नीचे लाली बटुर आई थी···यह लाली उसे बहुत अच्छी लगी! दो मिनट तक वह अंगूठे को सहलाती रही।

दर्द कम हो गया। अंगूठे की सहज गुलाबी वापस लौट आई। अब वह फिर से लेट जाएगी। लिहाफ को कमर तक खींचकर लेटने को हुई कि याद आया, स्विच ऑफ नहीं किया है।

अंधेरा होते ही उगनी ने सोचा, ऐसे में नींद तो भला क्या आएगी! सोचते-सोचते ही रात काटनी है! कटे रात सोचते-सोचते···पेट पर हाथ फेरते-फेरते उसने महसूस किया, कल सारा दिन हल्का-हल्का दर्द उठा करेगा। बहुत परेशान तो नहीं करेगा लेकिन मन को अपने में टांगे रहेगा।

ज़ोर से दर्द उठे ग्रौर थोड़ी देर बाद मिट जाए तो क्या हर्ज ?

कौन है अन्दर ? लड़का है कि लड़की ? लड़की न हो तो अच्छा। लड़की होगी तो अपनी मां की सारी मुसीबतें लेकर डोलती फिरेगी। इसी तरह उसे भी मायके से भागना पड़ेगा। इसी तरह अंधेरी रात में उसपर भी गांव के भले आदमी अपनी आशीष छिड़केंगे। इसी तरह न चाहने पर भी पचास साल का अधेड़ सिपाही उसे अपनी घरवाली बनाकर रखेगा। इसी तरह···

उगनी ने करवट बदल ली। बाईं बांह पर सिर रखा, अनजाने ही दबाव की मात्रा बढ़ी। पट्ट! गई···एक चूड़ी फूट गई। अभी चार रोज़ पहले गुलाबी चूड़ियों के आठ छल्ले लिए थे। ठीक है, थोड़ी देर बाद दूसरी भी टूटेगी। ज़रा देर बाद तीसरी और चौथी भी टूट सकती है···क्या रखा है इन चूड़ियों में ? बरसों उगनी ने इन चूड़ियों को पास फटकने तक नहीं दिया। रत्ती-भर भी मोह नहीं रह गया है उसके मन में इन चूड़ियों के प्रति।

बिस्तर को टटोलकर उगनी ने चूड़ी के टूटे टुकड़े बटोर लिए, उन्हें साड़ी के खूंट में बांध लिया—अभी कौन उठता है, कल फेंक आएगी। मां याद आ रही थी। उसने एक बार कहा था—चांदी के चार बन्द बनवा ले, खाली कलाइयां मुझसे देखी नहीं जातीं···भरी-भरी आंखों से मां नेअपनी बेटी की तरफ देखा था, मिन्टों तक देखती रह गई थी। उसके बाद कैसे दो बड़ी-बड़ी बूंदें टपकीं और किस तरह धरती ने उन्हें सोख लिया! उगनी को रत्ती-भर भी मोह नहीं है चूड़ियों का···लेटे ही लेटे उसने एक-एक चूड़ी निकाल ली, सूनी कलाइयों से सीना सहलाने लगी। वक्ष की कर्कशता ध्यान को फिर से अन्दरूनी भ्रूण की ओर खींच लाई।

यह भी बलात्कार ही था। ठीक है, भभीखनसिंह ने वैदिक विधियों से शादी की थी। ठीक है, आधे घंटे तक अग्नि में आहुतियां डाली गईं थीं। ठीक है, हवन के धुएं ने बहुतों की आखें आनन्द के आंसुओं से गीला

कर दिया था। ठीक है, तोला-भर सिन्दूर मांग के वीचोंवीच कई दिनों तक जमा रहा। सब कुछ ठीक है। लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच उम्र का इतना बड़ा फासला किस तरह मखौल उड़ा रहा था विवाह के संस्कारों का! बाबू भभीखनसिह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ। अब उगनी उनकी सन्तान को अपने लहू से पुष्ट वनाएगी··· कामेश्वर कैसे अब उगनी को स्वीकार करेगा?

उसे नर्मदेश्वर की भाभी याद आईं। भाभी ने कहा था—"लुच्चे-लफंगे अपना ही मुंह काला करते हैं। हमारा-तुम्हारा मुंह तो शीशे से भी ज़्यादा साफ रहेंगा।" तेज-ओज की उस प्रतिमा को याद करके उगनी ने दोनों हाथ जोड़ लिए, जुड़े हुए हाथों को माथे से सटाकर उसने भाभी को प्रणाम किया। अंधेरे में भी उसे लगा कि भाभी सिरहाने खड़ी हैं। कह रही हैं—"कामेश्वर तुम्हें लेने आया है, तुम ज़रूर उसके साथ चली जाओ। वह तुम्हें भी स्वीकार करेगा और तुम्हरे शिशु को भी स्वीकार करेगा। कामेश्वर नये भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं है वह···"

उगनी की आंखों से आंसू वह रहे थे। उसने फिर से एक-एक कर उन चूड़ियों को पहन लिया···गुलावी रंग की ये चूड़ियां कामेश्वर को वहुत पसन्द हैं। खुद उगनी ही कामेश्वर को क्या कम पसन्द है?

उसने अपने अन्दर उमंग-भरी फुर्ती महसूस की। भरोसे की भावना रग-रग में दौड़ गई। और चट से उगनी विस्तरे से उछलकर नीचे आ गई। उसके हाथ अपने-आप गतिशील हो उठे, उंगली जाकर अपने-आप स्विच से छू गई। कमरा आलोकित हो उठा।

कैलैंडरवाला वह किसान युवक उसी तरह कंधे पर हल लादे बैलों की जोड़ी को आगे ले जा रहा था। लगता था, सवेरा लो चुका है। उसने बिलकुल करीव जाकर उस किसान युवक की आखों में आंखें डाल दीं। आहिस्ता से फुसफुसाई—"तुम्हारी नाक और होंठ कामेश्वर से मिलते

हैं न ?"

अरगनी पर लाल कोर की दूसरी साड़ी भी रखी थी। उगनी ने उसे पहन लिया। ब्लाउज़ बदला। बालों में कंघी फेरी। अब उसकी तबीयत हुई कि आईने में अपना मुंह देखे।

आईना बड़ा नहीं था। पड़ोस की एक युवती बार-बार उगनी को चिढ़ाती रही थी कि ठिकाने का एक शीशा तक वह अपने घरवाले से मंगवा नहीं सकती। उगनी ऊपरी मुस्कान के सहारे पड़ोसिन के उस उलाहने को अब तक टालती आई थी। आज उसे पहली बार लगा कि आईना बड़ा होता तो ठीक था।

लेकिन इस तरह रात-रात जागेगी तो पागल नहीं हो जाएगी ?

नहीं, वह पागल नहीं होगी ! कामेश्वर के बारे में सोचते-सोचते दस पांच रात क्या, उगनी सारा जीवन गुज़ार देगी तो भी पागल नहीं होगी। हां, भभीखनसिंह के बच्चों की मां बनने के बाद पागल होने से उसे कोई नहीं रोक सकेगा।

बच्चे ! हुंह, बच्चे ! ···

अन्दर की उगनी मुस्कराने लगी। बाहर की उगनी लेकिन गम्भीर बनी रही। उसने आईनेवाली उगनी को मुंह बनाके चिढ़ाया—डूब मरना था तुझे तो ! बेहया की तरह हंस कैसे रही है ?

कानों में भाभी की खिलखिलाहट गूंज़ गई। भाभी की ही आवाज़ में सुनाई पड़ा—इसमें भला डूब मरने की क्या बात थी ? यह तो आत्म-हत्या का विकल्प था।···

(हां भाभी, यह विकल्प ही था जिसे मैंने स्वीकार किया। भभीखन-सिंह की घरवाली न बनी होती तो कामेश्वर किसको लेने आते ?

(और हां, यह विकल्प कबूल न किया होता तो ढाका या लाहौर पहुंच गई होती फिर तुम या कामेश्वर सर पटक के रह जाते, उगनी का पता न चलता।···

ऊपर से एक मोटी छिपकली गिरी और आईने के फ्रेम पर जीभ लप-लपाने लगी।

सहमकर उगनी दो कदम पीछे हट गई।

छिपकली अब भी जीभ लपलपा रही थी। मसूर-सी गोल-गोल उसकी आखें उगनी को घूर रही थीं। दुम का अनवरत कम्पन अनन्त भूख का सबूत बनकर उसे और डरावना बना रहा था।

उगनी आंतकित होकर दो कदम और पीछे हट गई। उसने साफ-साफ देखा : यह वही जन्तु है जिसने अंधेरी रात में उसपर हमला किया था। यह वही जन्तु है जो उसे उठाकर बांसों के झुरमुट में ले गया था। यह वही जन्तु है जिसने उसे बेहोश करके छोड़ दिया था। यह वही जीभ है जिसका खुरदरापन उसके तन-मन के लिए ज़हर बन गया। यह वही घिनौना जानवर है जिसके बदन पर उसकी मां ने रसोई की काली हांडी दे मारी थी। यह वही राक्षस है···

उगनी को लगा कि वह खड़ी नहीं रह सकेगी। तख्तपोश के छोर पर बैठकर छिपकली को देखती रही।

उसे अपना शिकार मिल गया था। जीभ की लपलपाहट बन्द हो गई थी। लट्टू के चक्कर लगाते-लगाते पांच-सात कीड़े दीवाल को छू रहे थे, छोड़ रहे थे। उन्हींमें से एक नीचे आया था। अभागे के पंख छिपकली के जबड़ों से बाहर थे, शरीर समूचा अन्दर चला गया था।

उगनी की आत्मा त्राहि-त्राहि कर उठी। यह मर्मान्तिक दृश्य उससे देखा नहीं गया, आंखें मूंदकर उतान लेट गई। एकाएक मन में आया कि ईंट का टुकड़ा उठाकर दे मारे छिपकली पर···और वह उठी भी। बाहर बरामदे के कोने में ईंट के टुकड़े जमा थे। एक वह उठा लाई। छिपकली आईने के फ्रेम से हटकर थोड़ा ऊपर चली गई थी।

उगनी ने उसे गौर से देखा तो उसके क्रोध को उलटा झटका लगा।

—हाय, यह तो खुद ही मां बननेवाली है!

ईंट का टुकड़ा वह वापस रख आई और बिस्तर पर बैठे-बैठे मादा छिपकली की ओर एकटक देखती रही। सोचती रही, राक्षसी मां की कोख से राक्षस शिशु ही बाहर आएगा लेकिन इससे मातापन की महिमा घट जाएगी क्या ? उसने कभी सुना था कि गर्भिणी बाघिन पर गोली चलाने से किसी शिकारी ने इन्कार कर दिया था···आज उसने भी मादा छिपकली पर ईंट नहीं चलाई···वह कामेश्वर के साथ भागनेवाली है। बाबू भभीखनसिंह ने भागते हुए उसे पकड़ लिया तो क्या वे भी उसे क्षमा कर देंगे ? मगर वह क्यों पकड़ी जाएगी ? मान लो, पकड़ ही ली जाए···

स्विच आफ करके फिर से वह लेट गई थी। फिर से माथे के अन्दर फिक्र की चर्खी चलने लगी थी। छिपकली को भूलकर वह अच्छी तरह मन की अपनी गुत्थियों में उलझ गई थी।

मां कहती थी, नींद न आए तो कपड़ा भिगोकर माथा पोंछ लेना चाहिए। हाथ-पैर, मुंह-कपार ठंडे पानी से पोंछ लो, तब भी पलकें झिप जाती हैं। उगनी सोचते-सोचते खीझ उठी। बाहर जाकर फिर पानी पी आई। मुंह-कपार धो आई।

चार बजेंगे तो सिपाहीजी लौटेंगे। बाहर सांकल खड़केगी, सीमेण्ट के फ़र्श पर लाठी बजेगी 'ठन्न' से। उस वक्त उठकर उगनी ने अगर दरवाज़ा न खोला तो भभीखनसिंह की हल्की हुंकार सुनाई पड़ेगी।

कई बार सिपाहीजी ने कहा है—"तुम्हारी नींद क्या है, पहाड़ है ! बाप रे, आदमी भी कहीं इस तरह सोया है ? बूटों की धमक से, लाठी की हुराठ से और गले की खखास से अगर तुम्हारी नींद नहीं टूटती है तो अब मुझे इसका कोई इलाज करना पड़ेगा।"

पिछली रात उगनी की नींद नहीं टूटी। आज रात भी उसकी नींद नहीं टूटेगी। सिपाहीजी सवेरे मोटी दातुन चबाते-चबाते उगनी को चार बातें ज़रूर सुना देंगे।

वह सब सुन लेगी। एक बार भी ज़ुबान नहीं खोलेगी। इत्मीनान से

परांवठे पोती रहेगी, आलू तलती रहेगी। सिपाहीजी प्याज़ नहीं खाते हैं। उसने भी प्याज़ छोड़ रखा है। सिपाहीजी मांस-मछली का नाम तक सुनना पसन्द नहीं करते, उसने भी मांस-मछली को अपने चित्त से उतार दिया है। सिपाहीजी को सूजी का हलवा अच्छा लगता है, उसको भी सूजी का हलवा अच्छा लगने लगा है। सिपाहीजी को पीले रंग में रंगा हुआ कपड़ा पसन्द है, उसको भी वही पसन्द है। यह जो मोरछाप नीले किनारों वाली गुलाबी साड़ी है इसे बाबू भभीखनसिंह के भांजे ने अपनी नवेली मामी के लिए सौगात के तौर पर भेजा था। वह पूर्वी छोर पर पाकिस्तान की सीमा के पास किसी थाने में दारोगा है। मामा को चिट्ठी में उसने लिखा था, मामी के लिए रेडियो का भी जुगाड़ करेगा। सिपाहीजी ने उस चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। पड़ोसियों को यह बात जाने कैसे मालूम हो गई। क्वार्टरों में हल्ला हो गया, भभीखनसिंह के यहां रेडियो आने वाला है। सिपाहीजी से भी लोग आकर पूछने लगे, कब आ रहा है रेडियो···सुना है अगले रविवार तक आ जाएगा···स्टेशन के मालगोदाम तक आ गया है··· इस तरह के सवालों का जवाब देना बेकार था। रामायण की चौपाइयां गुनगुनाते हुए, हनुमानचालीसा का पाठ करते हुए या इष्ट-मन्त्र का जप करते हुए, सिपाहीजी मोटे तौर पर निषेध की मुद्रा में माथा हिलाकर रह जाते थे। उगनी ने लेकिन पड़ोसियों से एक दिन कह दिया—लिख दिया गया है, रेडियो नहीं आएगा···इससे उनके पूजा-पाठ में बाधा होगी। सिपाहीजी को अपनी घरवाली की वह चतुराई अच्छी लगी। मन ही मन वे बोले—तभी तो 'धरमपत्नी' कहा है। उगनी में उनको धर्मपत्नी के सारे लच्छन मिल रहे थे। यह दूसरी बात थी कि सिपाहीजी में उगनी को 'घरवाला' तो ज़रूर मिल रहा था, पति नहीं मिल रहा था।

वह सब कुछ सुन लेती थी। उसके इस गुण पर भभीखनसिंह फिदा थे। लेकिन रात को चार बजे पूस की सर्द हवा में पन्द्रह मिनट तक क्वार्टर के सामने बाहर खड़ा रहना सिपाहीजी को बेहद अखरता था।

उगनी चाहती थी, कैसे भी उसे नींद आ जाए; चार बजे सांकल खड़के तो उसकी आंखें ज़रूर खुल जाएं।

तो क्या, चाहने से ही किसीको नींद आ जाएगी ?

उहं, कहां आएगी नींद चाहने से ही किसी को।

एक पत्ता भी नहीं हिलता है चाहने से; नींद तो भला नींद ही ठहरी, वह कैसे आ जाएगी चाहने-भर से ?

उगनी को लेकिन नींद आ जाएगी। वह पलकें झपका रही है। उसे पिछली रात भी नींद नहीं आई थी, उससे पिछली रात भी नहीं···आज ज़रूर आएगी नींद ?

(सो जा, राजकुमारी, सो जा !

[धत् ! यहां राजकुमारी कहां से आई ?

(लोकगीतों की दुनिया से उतरी है···सो जा, राजकुमारी, सो जा !

[लेकिन उगनी मामूली औरत है उसपर लोकगीत की यह कड़ी कैसे लागू होगी ?

(देखो न, कैसे होती है लागू ?

[सो जा, राजकुमारी, सो जा···सो जाऽऽऽऽ !···जाने किस ममतामयी के मुलायम हाथों ने उगनी को थपकाना शुरू कर दिया है··· सो जाऽऽऽ, सो जाऽऽऽऽ···सोऽऽ !

(हां, उगनी की आंखें झिप गईं···

लो, उसे सचमुच नींद आ गई !

बेसुधी में उगनी ने लिहाफ तक नहीं ओढ़ा। वह ऐसे ही सो गई। अब चार-पांच घंटों तक निश्चय ही वह गाढ़ी नींद की गहरी मात्रा लेगी। यह मात्रा साठ-सत्तर घंटों के बाद उसे मिली है। वह सपने नहीं देखेगी। स्वप्नहीन, अविराम और गाढ़ी निद्रा की झील में उसकी चेतना अपने पंखों को निस्पन्द बनाके पड़ी रहेगी। सर्दी महसूस होगी तो शायद आप ही लिहाफ खींचकर बदन को ढक लेगी। शायद, थकान का गाढ़ापन सर्दी मह-

सूस होने ही न दे और एक ही करवट में चार बज जाएं···

वक्त पर सांकल खड़की। लाठी बजी ठन्न् से फर्श पर।

उगनी की नींद लेकिन नहीं टूटी।

दूसरी बार सांकल जोर से खड़की और देर तक।

इस बार उगनी ने करवट बदली। थोड़ी देर तक आंखें नहीं खुलीं लेकिन लगा कि बाहर कोई सांकल खड़का रहा है। याद नहीं आ रहा था कौन सांकल खड़का रहा है। खुमारी में ही उसने अपने को बिस्तरे से उठाया। उल्टी दिशा में बढ़ी कि दीवार से छू गई।

अब उगनी की चेतना साफ हुई। उसे साफ-साफ लगा कि देर से सिपाहीजी सांकल खड़का रहे हैं।

सांकल खुली। ओवरकोट से ढंका हुआ भारी-भरकम शरीर अन्दर आया।

इस बार शीत ऋतु में और वर्षों की तरह जमकर जाड़ा नहीं पड़ा। वही बस मामूली किस्म की सर्दी रही। हल्का कम्बल और पतला लिहाफ काफी गर्माई पहुंचाते थे।

भभीखनसिंह ने यूं ही ओवरकोट निकलवा लिया था। परना खाली स्वेटर ही गर्मी फूंकने के लिए काफी था।

सिपाहीजी ने कहा—"तुम सो जाओ, मैं दिशा-फराकत जाऊंगा तो बाहर से ताला लगाके जाऊंगा।"

वह कुछ बोली तो नहीं, अलसाए हाथों से आले पर माचिस टटोलने लगी। खड़खड़ाहट सुनकर सिपाहीजी ने समझा कि चूल्हा सुलगनेवाला है। सिपाहीजी को सवेरे-सवेरे चाय ज़रूर चाहिए। साहब लोग सवेरे-सवेरे जिस तरह की चाय पीते हैं, उस तरह की नहीं। दूधवाली पंजाबी चाय, गिलास भरके। चीनी कम न हो।

सिपाहीजी उगनी को बहुत प्यार करते थे। ज़रा भी तकलीफ पहुंचाना

उन्हें खलता था। इस वक्त सवा चार बज रहे थे। दो घंटे बाकी थी रात। वे सचमुच ही घरवाली को परेशान नहीं करना चाहते थे। चाय तो खुद भी बना लेंगे। यह कोई नई बात थी उनके लिए ? चूल्हे से उनका पुराना रिश्ता था। सिपाहीजी और चूल्हा, चूल्हा और सिपाहीजी···बड़ा पुराना सम्बन्ध था। इधर ही कुछ महीनों से इस रिश्ते में ढिलाई आई थी।

बाहर लट्टू भभीखनसिंह ने जला दिया था। पन्द्रह यूनिट की पतली रोशनी में उन्होंने उगनी की गोरी बांहों को देखा, हिलते आंचल के छोरों में पीठ की झांकी ली। एक प्रकार की तृप्ति का अनुभव करते हुए मूंछों पर हाथ फेरने लगे। सोच रहे थे, जब उठ ही गई तो बिना चाय बनाए नहीं मानेगी। वह ज़रूर अपने हाथों से उन्हें चाय का गिलास थमाएगी और ज़रा हटकर खड़ी रहेगी। दो चुस्कियां लेकर उसकी ओर देखेंगे। निगाहों से ही उसे पता लग जाएगा कि चीनी ठीक है···

कान में जनेऊ लपेटकर सिपाहीजी बाहर निकले। अब उगनी जग गई है, चूल्हा सुलगाएगी। अब बाहर से वे ताला नहीं लगाएंगे। पहले सिपाहीजी ने बेल्ट खोला। फिर घुटनों के नीचे से ऊनी पट्टियां खोलीं। मोज़े निकाले। हाफपैण्ट के बदले अब क्या लपेटेंगे कमर में ? लुंगी ? नहीं, लुंगी सिपाहीजी को नापसन्द है। धोती का अद्धा अच्छा लगता है। कहते थे, लुंगी मुसलमानी लिबास है। पहन लो तो ऐसा ही लगोगे जैसे ढाके के बदरुद्दीन-फकरुद्दीन···

लुंगी के बारे में सिपाहीजी का ऐसा कहना उगनी को कभी अच्छा नहीं लगा। कामेश्वर लुंगी पहनता था न ! वह तो कभी ढाके का बदरुद्दीन या फकरुद्दीन नहीं लगता था। और, अब तो बड़े-बड़े आफिसर अपनी कोठियों के हाते में लुंगी पहने दिखाई देते हैं।

भभीखनसिंह तरसते रह गए कि कभी उगनी अपनी तरफ से भी तो ज़ुबान खोले, कुछ कहे, कुछ बतियाए, अपने-आप किसीको कुछ सुझाए ! मगर उगनी अपनी तरफ से कभी कुछ नहीं बोली। सिपाहीजी को अखरता

है। बटन दबाओ तभी मशीन के अन्दर हरकत पैदा होती है। उगनी भी तभी ज़ुबान खोलती है जब उससे कुछ पूछो। ज़नाना न हुई, मशीन हुई। सिपाहीजी को बड़ा अखरता है। उगनी की यह आदत कभी-कभी उन्हें वरदान-सी लगती है। नहीं बोलती है, ठीक करती है। चपर-चपर बोलने-वाली ज़नाना शीलवंत नहीं होती है। और, जो शीलवंत नहीं होगी, उसे छिनाल बनने में कै दिन लगेंगे? अच्छा करती है उगनी, अपनी तरफ से कभी ज़ुबान नहीं खोलती है।

लेकिन भभीखनसिंह को कभी-कभी यह सब अखरता इसलिए है कि पत्नी की इस आदत में उन्हें पति के अपमान की गंध आती है। औरों के साथ भले ही वह ऐसा ही वर्ताव करे मगर सिपाहीजी तो उसके अपने आदमी हैं। उनसे तो उसे बहुत कुछ कहने-सुनने का हक है। घरवाले से क्या घरवाली ठिठोली नहीं करेगी? छेड़-छाड़ नहीं करेगी? घर में हंसी-मखौल सब चलता है। छोटी-छोटी बातों में जीवन का सुख छलकता है। ज़रा-ज़रा-से रंगीन इशारों पर स्वर्ग निछावर होता है··· सिपाहीजी को कभी-कभी शक होता है कि उगनी अब तक दूर उनसे है, उसके दिल के अन्दर बहुत सारे फाटक हैं। दो-एक ही फाटक सिपाहीजी के लिए खुले हैं, बाकी फाटक बिलकुल बन्द हैं···सिपाहीजी को उगनी से डर लगता है। वे उसे कभी-कभी सन्देह की निगाहों से देखते हैं। कभी-कभी यह सोचकर अपने को आश्वासन दे लेते हैं कि बच्चा पैदा होगा तो मन की गांठें आप ही आप ढीली होती जाएंगी। तनाव आप ही आप कम होता जाएगा।

सिपाहीजी दिसा-फराकत से लौट आए। हाथ-मुंह धोकर देर तक मोटी दातून चबाते रहे। आज जाने क्यों, प्रवचन की उनकी आदत काबू में रही। चुपचाप दांतों पर हरी टहनी की कूंची फिरती रही और उधर चाय की केतली खौलती रही।

सवेरे-सवेरे वह पापड़ नहीं भूनती थी, आज दो पापड़ भून लिए। यह

सिपाहीजी को अच्छा लगा। लगा कि वह उनकी रुचि का काफी ध्यान रखती है। शुरू-शुरू में क्वार्टरों की इस दुनिया में रहनेवाले कुछेक प्राणियों ने अफवाह फैला दी थी कि उगनी का माथा खराब है···माथा खराब नहीं होता तो ऐसी खूबसूरत लड़की मारी-मारी भटकती ? फिर दूसरा शिगूफा लोगों ने यह छोड़ा कि उसे रोटियां सेंकना नहीं आता, रसदार भाजी नहीं बना सकती, नमक की मात्रा का उसको ज्ञान नहीं···सबकी ज़ुबान धीरे-धीरे बन्द हो गई। उगनी डेढ़-दो महीने के अन्दर ही घर-गृहस्थी के इम्तहान में पास हुई। अब पड़ोसिनें उससे अचार बनाने की विधियां सीख रही थीं।

सिपाहीजी को एक बात और आज नज़र आई। हाथ-मुंह पोंछकर, चोटी-कंघी से फुरसत पाकर वह साथ ही चाय पीने बैठी थी। पापड़ भी उसके हाथ में था आज। आठ साल की छोकरी जिस तरह उछालकर पापड़ का टुकड़ा मुंह में डालती है, उगनी उसी तरह पापड़ के टुकड़े मुंह के अन्दर ले रही थी। एक बार टुकड़ा अन्दर न जाकर बाहर गिरा, सिपाहीजी ने देख लिया और मुसकरा पड़े। इसपर उगनी भी मुसकराई। देर तक मुसकराती रही। मुसकान की गहरी आभा उसके चेहरे को देर तक के लिए रंग गई। भभीखनसिंह को यह दृश्य बड़ा अच्छा लगा। एकाएक मज़दूर को महीने-भर का बोनस मिल जाए तो कैसा लगेगा उसे ? वैसा ही आज भभीखनसिंह को लगा। उगनी आज पहली बार अपनी तबीयत से मुसकराई थी। गले तक की रगें फड़क उठी थीं। आन्तरिक प्रसन्नता की यह दिव्य आभा उसे और अधिक आकर्षक बना गई थी।

सिपाहीजी ने कहा—"इतनी अच्छी चाय कभी नहीं बनी।"

इसपर उगनी ने कुछ कहा तो नहीं। होंठों को चांपकर मुसकराहट के दबाने की कोशिश ज़रूर की। चाय का गिलास लिए ही उठकर वह कमरे के अन्दर चली गई।

क्षण-भर को कामेश्वर का ध्यान आया। ज़रूर अभी तक वे सोए

होंगे। क्या पता, धर्मशाला में तख्तपोशों की व्यवस्था है या नहीं। जाड़े की रात में नीचे फर्श पर बिना गद्दे के सोना कड़ी तपस्या होती है। क्या पता, किस तरह सोऐ होंगे! या उन्हें भी अच्छी नींद न आई हो और रात के पिछले पहर में पलकें झिपी हों···ज़रूर ही सपनों में उसे देखा होगा। नहीं देखा होगा। ऊंहूं, देखा होगा। वह उन्हें सपनों में देखती रही है, वे क्यों नहीं उगनी को देखेंगे?

आगे बढ़कर एक नज़र उसने आईने पर डाली। अंगूठी की शक्ल में बालों की एक लट ठीक भौंहों के बीच, ऊपर लटक रही थी···वे होते तो इस अंगूठिया लट को चूम लेते आगे बढ़कर।

अगले ही क्षण कमरे से निकलकर वह बाहर बरामदे में आ गई। अरगनी से मर्दानी धोती उतार लाई थी। थोड़ी देर में सिपाहीजी नहाने जाएंगे। नहाकर लौटेंगे तो बाहरवाले तख्तपोश पर बैठकर 'रामायण' और 'विनय-पत्रिका' का पाठ करेंगे। 'हनुमानचालीसा' पूरे का पूरा उन्हें ज़बानी याद है। छः बजे पूजा-पाठ खत्म करके नाश्ते पर बैठेंगे, दो परांठे और आंवले का अचार। बस और कुछ नहीं चाहिए। सुपारी का चौथाई टुकड़ा चबाते-चबाते क्वार्टर से बाहर निकलेंगे, आधा घंटा लोगों से मिल-जुल आएंगे। दूर नहीं जाएंगे, बहुत हुआ तो छोटे बाबू के क्वार्टर तक। छोटे बाबू के चाचा से सिपाहीजी की दोस्ती हो गई है। रोज़ हिन्दी का अखबार उनके लिए मंगवाते हैं छोटे बाबू। चाचा बड़े ध्यान से अखबार देखते हैं, ज्ञान की ज़रा-सी प्रसादी सिपाहीजी तक बढ़ा देते हैं।

टहल-बूलकर आने के बाद सिपाहीजी कुल्ला ज़रूर करेंगे। सुर्ती खाते हैं न! बिस्तर पर लेटने से पहले मुंह ज़रूर साफ कर लेंगे। फिर, सात बजे से लेकर दस बजे तक गहरी नींद मारेंगे। साढ़े दस बजे दिन का खाना खाते हैं। दोपहर में डेढ़-दो घंटा घर-गृहस्थी को देते हैं। राशन-बाशन, खरीद-फरोख्त, मरम्मत-फरम्मत कुछ न कुछ घरेलू काम निकल ही आता है।

आज स्टोव को बाज़ार ले जाएंगे, वह दस रोज़ से बेकार पड़ा है। घंटाघर के पास बूढ़ा मिस्त्री अच्छी मरम्मत करता है। सिपाहीजी स्टोव को उसीके हवाले करेंगे।

बारह बजे से चार बजे तक फिर सोते रहेंगे। सात घंटे नहीं सोएंगे तो रात की ड्यूटी कैसे करेंगे ?

खा-पीकर, बर्तन-बासन धोकर उगनी आज बच्चोंवाली किताब लेकर बैठी। दूसरी कोई किताब मिली नहीं। चलो, इसीसे मन को बहलाएगी।

कितने दिनों बाद किताब खोली थी उसने ! एक युग बीत गया था। रात नर्मदेश्वर की भाभी ज़ोरों से याद आई थी, यह शायद उसीका नतीजा था। भाभी ने ही पहले-पहल अक्षरों का अभ्यास करवाया था न ?

शाम को कामेश्वर से मुलाकात होगी। आज वह भाभी के बारे में ज़रूर पूछेगी। लगता है, कामेश्वर को खुद भी भाभी का पता नहीं है। आठ महीने जेल के अंदर बंद था। भाई-भाभी का उसे क्या पता ? गांव के साथियों में से कोई मिला हो और उससे मालूम हुआ हो ?

कागज़ तो उगनी को मिल गया था, पेन्सिल नहीं मिल रही थी।

तिवारी की छोटी लड़की उमा से पेन्सिल मंगवाकर उगनी लिखने बैठी···

शुरू से नहीं लिखेगी···

तीसरा पाठ।

" मुनि अयोध्या पहुंचे।

" राजा दशरथ ने उनकी बड़ी आवभगत की।

" कुछ देर बाद दोनों हाथ जोड़कर पूछा···

" मैं आपकी क्या सेवा करूं महाराज ?

" मुनि विश्वामित्र ने कहा—महाराज, अपने दोनों बड़े राजकुमारों को मेरे साथ बाहर जाने की आज्ञा दीजिए। राक्षस उपद्रव कर रहे हैं।

मेरा यज्ञ अधूरा पड़ा है आपके पुत्र राक्षसों से मुझे छुटकारा दिला···"

"चाची !" गीता आकर सटके बैठ गई, बोली—"तुम्हारी लिखावट कितनी अच्छी होती है !"

"···एंगे।" उगनी ने वाक्य को पूरा किया और गीता की ठुड्डी से पेन्सिल को छुआकर उसकी आंखों में देखा। दोनों खिलखिलाके हंसीं।

पिछले वर्ष शादी हुई थी। छरहरा कद। सांवली सूरत। नाक-नक्श दुरुस्त। आंखें बड़ी-बड़ी। बाईं कनपटी में घाव का पुराना निशान। उम्र अठारह की होगी। गीता तिवारीजी की बड़ी बेटी थी, बिलकुल पड़ोस के क्वार्टर में यह लोग रहते थे।

"हां चाची, तुम्हारी लिखावट मुझे बड़ी प्यारी लगती है।" वह उगनी के गले में झूल गई।

गीता अक्सर ऐसा करती थी और उगनी को यह सब बुरा नहीं लगता था। उसने अपने शरीर का आधा बोझा उगनी की गोद में डाल दिया, आंखों में आंखें डालकर देखती रही। फिर बोली—"आज किधर सूरज उगा है ?"

उगनी को हंसी आ गई। सोचा, हां, सचमुच मैंने पहली बार आज कागज़ की गोद-गाद की है···

"तुम तो दरजा सात तक पढ़ी हो न।"

गीता ने नाटकीय शैली में माथा हिलाया और बोली—"बाबूजी का कहना है, लड़कियां ज़्यादा पढ़के क्या करेंगी !"

"और, तेरा उनका क्या कहना है ?" उगनी ने खिलखिलाकर पूछा और कागज़-पेन्सिल को परे रखकर इत्मीनान से बैठी। बैठी क्या, पसर गई। गीता के पतले बदन को अपनी दाईं जांघ से चांप लिया। दायें हाथ की उंगलियों से उसके जूड़े को सहलाने लगी। उगनी को पता था, गीता का पति कालेज की पढ़ाई छोड़कर कहीं चीनी मिल में 'छोटा बाबू' हो गया है। वह अपनी नवेली बीवी को साथ रखना चाहता है। घरवाले नहीं

चाहते हैं। बस, मिल के हाते में न सही, आस-पास कहीं बाहर भी डेढ़-दो कमरेवाला खपरैल या खटछप्पर मिलने की कसर है। वह गीता को ज़रूर ले जाएगा। अपनी कोयल को साथ रखेगा···उगनी को अच्छा लगेगा, गीता और उसके पति साथ रहेंगे।

कहने को चाची-भतीजी का रिश्ता था, दरअसल उनका आपस का बर्ताव सहेलियों का था। डेढ़-दो महीने के अन्दर ही दोनों काफी घुल-मिल गई थीं। मज़ाक-मखौल खुलके चलने लगा था।

पिछले महीनों में गीता का घरवाला दो बार ससुराल आ चुका था। तिवारीजी की बीवी ने काफी ज़ोर डाला, मगर भभीखनसिंह की घरवाली उसके दामाद के सामने नहीं हुई। भभीखनसिंह को अपनी बीवी से यही उम्मीद थी। तिवारीजी का दामाद भभीखनसिंह का भी दामाद था, इससे किसीको इन्कार है ? रिश्ते के मुताबिक उगनी उस लड़के की सास हुई। बूढ़ी होती तो सामने होने में कोई झमेला नहीं था। मगर जवान सास नई उम्र के दामाद से खुलेआम नेह-छोह बढ़ाएगी तो अनर्थ नहीं होगा ?··· भभीखनसिंह को बड़ा अच्छा लगा कि उनकी घरवाली तिवारी के दामाद के सामने नहीं गई। सुना कि लड़के ने काफी ज़ोर लगाया था। रात-दिन रटता रहा—चाची, चाची, चाची, चाची ! लेकिन चाची का दिल बबुआजी पर नहीं पिघला···

पति की बात आ गई बीच में। गीता थोड़ा शरमाई। निगाहों से निगाहों को थाहा, फिर बोली—"चाची, जितना पढ़ लिया है, उतना ही काफी है। हज़म हो तो थोड़ी भी विद्या कम नहीं होती।"

उगनी ने प्यार के मारे गीता का कल्ला दबा दिया। कहने लगी—"तीसरी आंख होती है विद्या, समझी ?"

चाची की गिरफ्त से छुटकारा पाने की कोशिश करते-करते गीता बड़ी-बड़ी आंखें नचाकर बोली—"तीसरी आंख लेकर कोई क्या करेगा ? दो आंखें मिली हैं, वही क्या कम हैं ? ठिकाने से काम लो तो यही बहुत हैं···"

गीता की इस बात पर खुश होकर उगनी ने उसे छोड़ दिया। पूछा—"छितौनी कब जा रही है रे?"

छितौनी के नाम पर गीता के कानों को गुदगुदी लगी। वह मुसकराई। बोली—"क्या पता, कोई ले भी तो जाए!"

"मैं पहुंचा दूं?"

"धत्!"

"डर लगता है?"

"डर काहे का लगेगा?"

"मैं तुझे भगा ले जाऊंगी और···"

"और, और क्या करोगी चाची?"

"और, बेच आऊंगी कहीं पर···"

"मैं क्या कोई मैना हूं?"

"मैना नहीं, तू बुलबुल है···"

"अच्छा चाची, एक बात पूछूं?"

उगनी ने स्वीकार की मुद्रा में अपना माथा हिला अवश्य दिया किन्तु मन ही मन उसे डर लगा। गीता जाने क्या पूछ बैठे? अब उसे पता चला कि भावावेश में आकर कितनी बड़ी भूल वह कर बैठी है। भागने-भगानेवाली बातों की क्या ज़रूरत थी? गीता तो खैर अठारह वर्ष की छोकरी है लेकिन वह खुद तो अठारह वर्ष की नहीं है। बाईस पूरे करके अगले फागुन में तेईसवें में प्रवेश करेगी। उसकी समझदारी को अभी क्या हो गया था? निश्चय ही गीता पूछेगी और घर से भागने के बारे में उसे कुछ न कुछ बताना ही पड़ेगा··नहीं, वह बिलकुल नहीं बताएगी। चलो, बतला ही देगी। झूठ की चाशनी देकर ऐसी कहानी गढ़ेगी, ऐसी गढ़ेगी कि···

कि गीता ने खुद ही सवाल को बदल दिया। पूछा—"चाची, आज शाम को तुम उनसे मिलने नहीं जाओगी?"

"अरे, मैं तो भूल ही गई थी!" उगनी ने दिखावे के तौर पर विस्मय

प्रकट किया। अन्दर ही अन्दर खुश हुई। गीता से ज़्यादा उलझना नहीं पड़ा। पिछला सवाल वह भूल गई थी।

"शाम को चलना ज़रूर!" उगनी ने गीता के हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा। दोनों एक-दूसरे की ओर देख रही थीं। गीता का दाहिना हाथ उगनी के बायें हाथ को सहला रहा था। अनजाने ही चूड़ियां गिनकर वह बोली—"हाय, एक चूड़ी क्या हुई चाची?"

उगनी ने उसकी ओर फीकी नज़र से देखा। क्षण-भर बाद बोली—"रात टूट गई!"

गीता ने भौंहें नचाकर कहा—"यह बड़ा बुरा हुआ। मैं चाचा से कहूंगी। उनसे नई चूड़ियां मंगवाऊंगी तुम्हारे लिए···"

उगनी ने गीता के होंठों पर अपनी हथेली रखके आगे बोलने से मना किया।

"क्यों?" मुंह छुड़ाकर गीता चीखने लगी—"क्यों मना करती हो मुझे? मर्द को क्या इतनी सज़ा भी नहीं मिलनी चाहिए? जुर्माना तो चाचाजी को भरना ही पड़ेगा। मैं नहीं मानूंगी।"

उगनी हंसने लगी। हंसते-हंसते गीता को अपनी ओर खींच लिया। गालों पर एक-एक हल्की चपत जमाकर बोली—"मेरे लिए तू किस-किससे लड़ती फिरेगी?"

वह तुनककर बोली—"अब तुम चाचा की तरफदारी न करो। मैं मानूंगी नहीं, चूड़ियां ज़रूर मंगवाऊंगी।"

उगनी ने हंसकर कहा—"सुन रे पगली! देख ले इन हाथों को··· अभी तो खैर एक ही चूड़ी फूटी है, आगे सारी की सारी फूट जाएंगी। इनके फूटने, न फूटने में क्या रखा है? हां, भगवान करे, किसीकी तकदीर न फूटे!"

गीता झुक आई। कान में फुसफुसाकर कहा—"चाचा बड़े कंजूस हैं।" और आंखें नचाकर हाथों के इशारे से बतलाया—"इतना रुपैया गाड़-

के रखा है···सोने की हंसुली इनसे ज़रूर बनवा लो ! बेर-वखत पर काम आएगी···"

उगनी उस छोकरी की इन बातों पर दंग रह गई। मन ही मन उसने गीता को गालियां दीं—मन्थरा की नानी कहीं की ! ···अगले ही क्षण सोचा, इसमें बेचारी गीता का क्या कसूर ? कोई और घरवाली सिपाहीजी की होती तो ज़रूर ही चार तोले सोने की हंसुली बनवा लेती ! इस हंसुली के लिए वह क्या कुछ नहीं करती। अधेड़ मर्द के सामने नौ नखरे करती। उसके प्यार-भरे अनुरोध पर बाबू भभीखनसिंह अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों को उस्तरे के हवाले कर देते, बालों को इतना महीन छंटवाते कि उम्र दस साल कम मालूम देती। सिपाहीजी की वह घरवाली उनके बदन का एक-एक रोआं चूमती। उसकी इन अदाओं पर रीझकर सिपाहीजी उसके नाम पर डाकखाने में हिसाब खुलवाते। तीन चाबियों का छोटा-सा गुच्छा फिर जनेऊ में न बंधा होता···

"अच्छा चाची, तुम्हें अपनी मां का चेहरा याद है ?" गीता ने प्रसंग बदलकर पूछा। उगनी क्षण-भर के लिए सहम गई। उसने यहां सभीसे कह रखा था कि उसके मां-बाप पन्द्रह वर्ष पहले ही हैज़े में मर गए थे। आधा झूठ, आधा सच। मां थी, बाबूजी नहीं थे। बाबूजी का चेहरा ध्यान में आता ज़रूर था मगर धुंधला-धुंधला। लेकिन मां तो छाया की तरह उगनी के साथ थी। मां के बारे में गलत बतलाते समय उगनी के रोंगटे खड़े हो रहे थे। जैसे-तैसे अपने पर काबू रखकर उसने कहा—"हां, अच्छी तरह याद है मां का मुखड़ा। बचपन में गले का आपरेशन हुआ था, दाहिने कन्धे के ऊपर बड़ा निशान था। मेरी आंखें गोल हैं, उसकी कमल-पत्री आंखें थीं···

"अच्छा चाची···"

उगनी ने गीता के होंठों पर हाथ रखा—"अच्छा-अच्छा, रहने दे अब। दुपहरिया का अपना सोना मैं हराम नहीं कर लूंगी तेरे चलते···"

गीता ने तनकर कहा—"सच ? तुम्हें नींद आ रही है ? पूस-माघ के दिनों में तो बीमार लोग ही सोते हैं।"

"मैं भी बीमार हूं।" उगनी मुसकराई। उठकर आंगन के कोने तक गई। जाड़े की धूप तिरछी सरक आई थी। मर्तबान को उठाकर फिर से उगनी ने धूप में रखा। अन्दर नीबू भरे थे।

गीता भी खड़ी हो गई थी। मालूम था कि चाचा आनेवाले हैं, बारह-साढ़े बारह बजे वे ज़रूर सो जाते हैं। बरामदे से ऊपर दीवार पर उसकी दृष्टि पहुंची। सिन्दूरी लिखावट में दो पंक्तियां अब उतनी चमक नहीं रही थीं, लेकिन अभी काफी अर्से तक पढ़ी जाएंगी। इन्हें गीता ने ही लिखा था। मन ही मन वह दुहराने लगी···

'अचल रहे अहिवात तुम्हारा।
जब तक गंग-यमुन की धारा॥'

दुहरा गई। एक बार, दो बार। लिखावट अपनी थी, मोह लग रहा था। इच्छा हो रही थी, सिंदूर घोलकर इन पंक्तियों को एक बार और चमका दे···

आंगन में इस पार से उस पार तक पतला तार टंगा था। कपड़े सूख चुके थे। उगनी उन्हें सहेजने आई। दूसरी बांह से गीता को धकेलती हुई कमरे के अन्दर गई।

"क्या देख रही थी रानी ?"

"और क्या देखूंगी !"

"अचल रहे अहिवात तुम्हारा ?"

"हां, जब तक गंग-यमुन की धारा !"

"झूठ !"

"नहीं चाची, झूठ नहीं···"

"क्या बकती है !"

"बकती हूं ?"

"अपने चाचा की मूंछों को नहीं देखा है ?"

गीता उदास हो गई। उसकी रग-रग डूबने लगी। वह सोचती रही, गंगा-यमुना चाहे मिलकर ज़ोर लगाएं तो भी चाचा की जवानी वापस नहीं लौटा सकतीं वे। क्या ज़रूरत थी शादी की ? हां, थी ज़रूरत ! छः महीने बाद चाचा किसीके पिता होंगे। शादी न होती तो कैसे पिता होते ?···

उगनी ने उसे सुस्त देखा तो बांहों में ले लिया, मुंह बना-बनाकर हंसाने लगी। बोली—"अबके दूल्हाजी आएंगे तो मैं उनसे खुद ही कहूंगी, हमारी गितिया को आप इतना क्यों तरसाते हैं ? आप उसे ले क्यों नहीं जाते ? कब तक अकेली रहेगी ? सीता का वनवास तो कानों से सुना था, गीता का वनवास अब आंखों से देख रही हूं···"

गीता विनोद की बातों से खिल उठी। आंखों के कोए चमकने लगे। लाज की थिरकन से बेताब होकर अपने को उसने छुड़ा लिया। बाहु-बंधन से मुक्त होकर वह भाग ही गई।

"कल तो शाम को तुमने शिवजी की बूटी नहीं ली, आज लेकिन दोपहर का प्रसाद ग्रहण करना पड़ेगा।" जब बूढ़े पुजारी बाबा ने कामेश्वर से यह बात कही तो समझ में नहीं आया कि वह 'हां' करे या 'ना'···

पुजारी बाबा वैरागी साधु थे। उम्र पैंसठ से कम न रही होगी। जवानी में निश्चय ही खूबसूरत होंगे। क्या वे हमेशा से यहीं जेल के पड़ोस में पड़े रहे? क्या वे बचपन में ही घर से भाग आए थे?

कामेश्वर के मन में पुजारी के बारे में कई तरह के सवाल उठे मगर उसने उन्हें दबा लिया। सोचा, इतने प्यार से बाबाजी भोग की सामग्री तैयार करेंगे और ठाकुरजी का प्रसाद न लूं तो उनको दुःख होगा। कहीं तो दोपहर का खाना खाऊंगा ही, बाबाजी की ही बात क्यों न रख लूं?

प्रकट तौर पर उसने कहा—"बाबा, नाहक आप झमेले में पड़ेंगे! एकाध बतासा मेरे लिए काफी रहेगा।"

बाबाजी बगिया में धनिया की पत्ती खोंट रहे थे। क्यारी के बाहर कामेश्वर खड़ा था। बाबाजी बोले—"बतासा तो भारी पड़ेगा, तुलसी का दल ठीक रहेगा···" इसपर दोनों को हंसी आ गई।

बाबाजी बोलते गए—"सबको मैं थोड़े कहता हूं प्रसाद के लिए? तुमको उस रोज़ पहली बार देखा तभी सोचा, अच्छा लड़का होगा। शीलवंत, पढ़ा-लिखा, खानदानी। सोचा, इस लड़के को पास बैठाकर मन को शान्ति मिलेगी। ज़रूर बोल मीठे होंगे···"

कामेश्वर को बूढ़े बाबा पर दया आई। ये लोग ज़िन्दगी-भर पारिवारिक स्नेह के लिए तरसते रहते हैं। बुढ़ापे में इनका आत्माराम प्यासा रहता है और छोटी उम्र के छोकरों को देखते हैं तो प्यार के मारे गीले हो उठते हैं। बेटा-बेटा, राजा-राजा कहेंगे, प्रसाद के नाम पर मेवा-मिठाई खिलाएंगे और पास बैठाकर देर तक देखा करेंगे, विभोर होकर। उनकी विह्वलता देखकर उन बेचारों पर दया आती है। उनका प्रसाद अस्वीकार कर दो तो वे रो पड़ेंगे—"रामजी को मंजूर नहीं था।"

कामेश्वर बाबाजी का प्रसाद अवश्य स्वीकार करेगा। दोपहर का खाना होटल में तो रोज चलता ही है, एक रोज़ हनुमानजी की मठिया का प्रसाद ही सही।

बाबाजी क्यारी से बाहर आए। झोले में बैंगन, मूली, गोभी के फूल और जाने क्या-क्या भरा था। थोड़ी-बहुत सब्ज़ी-भाजी वे मठिया की बगीची में उगा लेते थे। कुएं की वजह से पानी की सुविधा थी।

कामेश्वर ने कहा—"बाबा, ग्यारह बजे आ जाऊंगा।"

बाबाजी ने कहा—"बारह तक मैं तुम्हारी राह देखूंगा···मगर तुम जाते ही क्यों हो? यहीं स्नान करो; तेल, साबुन, कपड़ा, तौलिया—सबका प्रबन्ध हो जाएगा। तुम्हारे जैसे भक्त आते ही रहते हैं। यह मठिया ज़रूर है लेकिन थोड़ा-बहुत आराम न मिले ऐसी बात नहीं।"

क्या बात सूझी कि कामेश्वर ने एकाएक पूछ दिया—"यहां रामलीला होती है कि नहीं?"

"वाह, रामलीला ही नहीं होगी? आसिन-कातिक में इधर आओ तो देखो।"

हाथ जोड़कर कामेश्वर वापस आया।

धर्मशाला के गेट पर पड़ोसी कमरे का युवक मानो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह कामेश्वर को अपने कमरे के अन्दर ले गया और पाकेट से निकालकर तार आगे बढा दिया।

पढ़कर टेलीग्राफवाले कागज कामेश्वर ने जेब के हवाले किया और अपने कमरे के अन्दर आया। नर्मदेश्वर का तार था।

जल्दी से जल्दी कामेश्वर को लौटना चाहिए। और जीप का इन्तज़ाम चार दिन बाद होगा। क्या पता पूरा सप्ताह और लग जाए !

कमरे के कोने में कपड़ों का वह गट्ठर था, जिसे दो बार कंधों पर लादकर कामेश्वर को पुलिस लाइन के इर्द-गिर्द चक्कर काटना पड़ा था। गट्ठर भारी नहीं था। पांच-सात साड़ियां, चार-छः चादरें, ब्लाउज़ के लिए कटपीसवाले चन्द टुकड़े···और कुछ नहीं था। सेठ सुगनचन्द के भतीजे से नर्मदेश्वर की गाढ़ी दोस्ती थी। उसने कहा था—"ज़रूरत पड़े तो वह दस गट्ठर माल फेरी के लिए देगा। यहां दस गट्ठर का क्या काम था ? फेरी तो करनी थी नहीं, फेरी का नाटक करना था। यह नाटक कामेश्वर ने किया और अच्छी तरह किया। तीन साड़ियां बिकीं, चादर का एक पल्ला खपा, कटपीस सारे निकल गए···

कामेश्वर को हंसी आ गई। समूचा गट्ठर कटपीस का ही ले आता तो मुनाफे की बड़ी गुंजाइश थी। कैसे टूट पड़ीं उन टुकड़ों पर ! क्या बूढ़ी क्या छोकरी, सभी लपक आईं और कटपीस के टुकड़ों को सीने से लगा-लगाकर एक-दूसरे को कैसे आंख मारने लगीं। फेरीवाले औरतों की इन कमज़ोरियों को अच्छी तरह जानते हैं···

कामेश्वर को उस रोज़ उगनी का वह झांकना बड़ा अच्छा लगा था। दरवाज़े से निकलकर एक युवती चार कदम आगे बढ़ी। कामेश्वर ने पहले चेहरे की ओर ध्यान नहीं दिया। गुलाबी साड़ी का मोरछाप किनारा पैरों तक फहरा रहा था और युवती का शरीर बीच में ठिठक गया। फेरी-वाले ने क्षण-भर के लिए सोचा था, वापस लौटकर दाम ले आएगी तब आगे बढ़ेगी। लेकिन नहीं, वह जैसी की तैसी ठिठकी रही। सहजन के तले माल फैलाकर सामनेवाली औरतों से वह मोल-भाव कर रहा था। गुलाबी साड़ी का मोरछाप किनारा आगे नहीं बढ़ा तो फेरीवाले ने उस

चेहरे की ओर नज़र उठाई थी। उगनी ने उसे भली-भांति देख लिया था और फुर्ती से लौट गई थी। सामनेवाली औरतों में से एक छोकरी ने कई बार आवाज़ दी थी—"चाची, चाची, अरे सुनो तो! बड़े अच्छे पीस हैं, एक बार देख तो जाओ!" वह पीछे-पीछे पहुंचकर क्वार्टर के अन्दर से उसे शायद खींच भी लाती लेकिन सामनेवाली बुढ़िया ने उसे डांटा—"चाची-चाची मचाए रहती है! एकाध अच्छा टुकड़ा मेरी पतोहू के लिए चाची छांट देगी सो नहीं होगा!" निश्चय ही बुढ़िया की पतोहू मायके गई होगी···

कामेश्वर को याद आया, वही लड़की तो उस रोज़ हनुमानजी की मठिया तक उगनी के साथ आई थी। आज भी शायद उगनी उसीके साथ मठिया पहुंचेगी। लगता है, यहां भी उगनी ने दो-एक सहेलियां बना ली हैं। औरतें सहेली बनाने की कला में उस्ताद होती हैं। दो अपरिचित मर्द हफ्तों-महीनों आस-पास रहेंगे, लेकिन एक-दूसरे के दिल में प्रवेश नहीं पा सकेंगे। औरतें घंटों में ही यह काम कर लेती हैं।

कामेश्वर ने क्षण-भर के लिए आंखें मूंद लीं। लगा कि गट्ठर की बाकी तीन साड़ियां उगनी एक साथ लपेट लेगी। वह नहाकर आई है। कमर से नीचे सूखा पेटीकोट झूल रहा है। बालों में तौलिया लपेट रखा है। बिना बांहोंवाला चम्पई ब्लाउज़ सीने को और भी गरिमा प्रदान कर रहा है।

कमरा नं० ३४ वाला नौजवान आवाज़ देकर अन्दर आ गया।

"आज आप नहाएंगे नहीं ?"

"चलिए आता हूं।"

"हां, कुएं पर अभी कोई नहीं है।"

"तेल होगा ?"

"आइए भी तो!—और हां, एक बात···"

कामेश्वर ने चलते-चलते अपना एक कान युवक की ओर बढ़ा दिया।

साथ खाना खाने का अनुरोध था। कामेश्वर ने मजबूरी ज़ाहिर की बोला—"शाम को नाश्ता-चाय साथ चलेगी।"

उगनी खाना तैयार करके रख आई थी।

गीता ने आज भी चाचा से पूछ लिया था और अनुमति मिल गई थी।

मठिया में बाबाजी फूलों की माला गूंथ रहे थे। गीता प्रणाम करके सामने बैठी, उगनी बगीची की ओर चली गई।

"लाइए बाबा," गीता ने हुलसकर कहा—"मैं भी माला बनाऊं!"

बनावटी गुस्से में बाबाजी ने कहा—"बंदरिया कहीं की! हट, तू क्या जाने माला-फाला···"

"नहीं महाराज···" मचल के बोली गीता—"मैं बहुत अच्छी माला तैयार करूंगी!"

"जा हाथ धो आ!"

"अच्छा महाराज!"

आंखों के इशारे से बाबाजी ने गीता को बुलाया तो वह बिलकुल पास आ गई। गीता को मालूम है, बाबाजी का यह अपना खास ढब है बातें करने का। कान के पास मुंह लाकर फुसफुसाएंगे। बात कोई खास नहीं रहेगी, लेकिन बाबाजी फुसर-फुसर करेंगे।

"तिवारीजी ठीक हैं न?" गीता के दाहिने कान में फुस-फुस हुई। उसने माथा हिलाकर 'हां' का संकेत दिया।

गीता ने कुछ और भी सोचा था। उसे लगा था, बाबाजी जानना

चाहेंगे—'भभीखनसिंह की घरवाली से कौन आदमी बातें कर रहा है ?'

'चाची के मामा का लड़का है, कपड़े का धंधा करता है।' गीता ने जवाब भी सोचकर रख लिया था। लेकिन, बाबाजी ने निहायत मामूली बात पूछी, उसके अपने पिता के बारे में। तो फिर वही क्यों न बतला दे ?

उसने धीमी आवाज़ में कहा—"महाराज, आप जानते हैं न उनको ? वे चाचीजी के मामा के लड़के हैं, कपड़े की दुकान करते हैं, सेठ हैं···"

"तेरे लिए क्या लाए हैं ?"

"जब वे अपनी फुफेरी बहन के लिए कुछ नहीं ला सके तो आप क्या पूछते हैं ! शायद हनुमानजी को चढ़ावा मिला हो···"

"बड़ी चंट है तू ?"

"ज़रूर मिला है महावीरजी को कुछ ! है न ?"

"जा, भाग !"

गीता, तालियां पीटने लगी—"कर लिया मालूम ! कर लिया मालूम ! कर लिया मालूम !"···सामने, मठिया के आंगन में परले छोर पर पानी वाला पम्प था। गीता उधर हाथ धोने चली गई।

बाबाजी इधर आरती का जुगाड़ करने लगे। सोच रहे थे, आखिर तिवारी की इस बच्ची ने मालूम कर ही लिया। दस ही तो मिले हैं, दस-बीस अभी और मिलेंगे···कैसी ममेरी और कैसी फुफेरी ! ऐसा नज़दीकी रिश्ता था तो धर्मशाला में क्यों ठहरा है ? शायद, भभीखनसिंह से वह मिलना नहीं चाहता था। खानदानी ढंग से शादी हुई होती तो बात ही और थी···लेकिन लड़का मिठबोला भी है, समझदार भी। सेठ हो या अफसर, हमारा क्या बिगाड़ता है ? बहन से मिलने आया है, मिले। राम-जी भला करें बेचारे का। बार-बार घेरने पर तो दिन का भोजन स्वीकार किया···आधा सेर दही और सेर-भर मिठाई बाज़ार से लाया था ! उदार आदमी छछून्दर स्वभाव का हो ही नहीं सकता। तबीयत तो लड़के ने ऐसी पाई है कि···

कि गीता ने कहा उधर से—मैंने तीन मालाएं तैयार कर लीं बाबा! अब लाइए, रुई बढ़ाइए! आरती के लिए दीपों की बत्तियां बांट दूं। आज मेरा जी कर रहा है सेवा करने का, मगर यहां करने को कुछ हो भी तो!

"रामायण बांचकर हनुमानजी को सुना!" बाबाजी ने मठिया के अन्दर से आदेश दिया और मझोली साइज की एक पोथी बाहर चौखट के पास बढ़ा दी।

गीता आसन पर पाल्थी मारकर बैठी और धीमी आवाज में पाठ करने लगी:

"अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥
"मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥..."

दोनों श्लोक याद थे इसलिए कि तिवारी जी ने बचपन में ही बहुत-कुछ रटा दिया था। गीता को इस बात का ही ध्यान अधिक था कि चाची को अपने भाई से गप-शप करने का पूरा वक्त मिले।

चौपाइयों की वाटिका में उसका मन सैर करने लगा। बाबाजी आरती की तैयारी कर रहे थे।

यह मठिया कहने को छोटी थी, लेकिन डेढ़ सौ वर्ष पुरानी। इसका इतिहास जेल के साथ जुड़ा था। उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में ज़िला-जेल का परकोटा तैयार हुआ था। रतनपुर के देहातों में दस-पन्द्रह कोठीवाले अंग्रेज़ ज़मींदार जम गए थे, उनका आतंक १९२० तक बना रहा।

लगभग सौ वर्ष उन्होंने गंवई जनता को खूब कसकर दूहा। मुगल सूबेदारों और नवाबों की हकूमत अठारहवीं सदी के मध्य तक काफी शिथिल पड़ गई तो 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के गोरे हाकिमों ने उत्तर बिहार के उन इलाकों में अपने हाथ-पैर फैलाने शुरू कर दिए। विरोध में जो भी कोई आवाज़ उठाता वह बागी करार दिया जाता···ठग, डाकू, चोर, बदमाश आदि भी गिरोह बनाकर घूमा करते थे और उनके अन्दर फिरंगियों के प्रति अपार घृणा सुलगा करती थी। उन्हींका होश ठिकाने लाने के लिए इन जेलों की दीवारें खड़ी की गई थीं। जेलर पढ़ा-लिखा होता था मगर सन्तरी-सिपाही ठेठ किसान होते थे। लाठी, लाल लंगोटा, ढोलक, मजीरा, तुलसीदासी रामायण और हनुमानजी उनके सुख-दुःख के साथी थे। बजरंगबली की यह छोटी-सी प्रतिमा रतनपुर जेल के उन्हीं आदिम वार्डरों की श्रद्धा का प्रतीक थी।

जेल के सिपाही हनुमानजी की इस प्रतिमा को अपना 'घरेलू देवता' मानते आए थे। बहुएं और बेटियां घंटों वहां गुज़ार देतीं, कोई उनसे पूछता नहीं था।

बगीची में बातचीत खत्म करके उठते-उठते कामेश्वर ने पूछा—"सिपाहीजी नहीं आते हैं यहां?"

"सनीचर को।" उगनी बोली।

"और तुम?" कामेश्वर मुसकराया।

उगनी ने कहा—"अक्सर मंगलवार की शाम को आती रही हूं।"

"अब तक कितने लड्डू चढ़ा चुकी हो?"

"ढाई सेर!"

"गिनती पूछ रहा था···"

उगनी हंसने लगी, बोली—"गिनती से क्या, भगत को तो प्रसाद चाहिए न?"

कामेश्वर ने मुंह बनाकर कहा—"भगतिन की नानी कहीं की! चल,

वाबाजी से दो लड्डू लेकर दे मुझे ! प्यास लगी है···"

"बस ? सिरिफ दो ठो !"

"हां, दो ठो !"

"चाची।" उधर से गीता की ग्रावाज़ आई, "चलोगी नहीं ?"

"आई !" आहिस्ते से उगनी बोली।

चलते-चलते उसने कामेश्वर से संकेत में आदेश की याचना की।

बाबाजी ने पुकारा, "आरती का नबेद लेते जाओ बबुआ !"

"रख दीजिएगा," कामेश्वर ने ऊंची आवाज़ में कहा—"निबट के आ रहा हूं बाबा !"

मठिया के बरामदे से उतरकर गीता आंगन में आ गई। उगनी से कहा—नबेद लो चाची ! बतासा तो तुम लोगी नहीं, किसमिस मैं अपनी भी दूंगी···

ज़्यादा नहीं, लेकिन थोड़ा दूध उफनकर गिर गया था। नीचे सीमेण्ट का फर्श था, दूध फैलकर अपनी गाढ़ी सफेदी बिखेर रहा था···

सांवली सूरत और लम्बी मुखाकृतिवाली तिवारीजी की बीवी अपने को संभाल नहीं पा रही थी। मुश्किल से गाय का यह आधा सेर दूध मिलता था, और उसमें भी अगर पाव-भर धरती माता ही सोख लेगी तो कैसे काम चलेगा ?

गुस्से का पहला उबाल खत्म हो चुका था, अब दूसरा उबाल आने-वाला था। दो साल का दुलरूआ बेटा आकर गोद में बैठ गया। आंचल के अन्दर हाथ डालकर धीरे-धीरे छाती टटोलने लगा तो खीझकर मां बोली-- "ले, पी ले ! अब और कुछ तो नहीं रह गया है। लड्डू ज़रूर मिलेगा। राक्षस कहीं का ? घड़ी-आध घड़ी भी चैन से बैठने नहीं देता···"

जबरन उसने बच्चे की थुथनी को अपने स्तन से सटा लिया और सुलगती हुई बोली, "ले, प्राण ही पीले मेरा ! जीके क्या करूंगी···"

आंगन के कोने में नौ साल की बिटिया बर्तन साफ करने में लगी थी। छोटी-छोटी दो पतीलियां, एक बटलोई, कड़ाही, तवा, थालियां, कटोरे ···काफी बर्तन सामने पड़े थे। वह काले हाथों से अकेली जूझ रही थी, मन ही मन उसे बड़ी बहन पर गुस्सा आ रहा था। बीच-बीच में सहमी निगाहों से पीछे देख लेती, मां की खीझ का अन्दाज़ लेते रहना ज़रूरी था।

दरजा आठ में पढ़नेवाला लड़का बाहर था, अपने साथी से मिलने गया होगा। अभी दो रोज़ पहले आठवीं का इम्तहान खत्म हुआ था, पर्चे अच्छे हो गए थे। तिवारी की बीवी को बड़ा अभिमान था कि लड़का साइंस पढ़ रहा है। दुलार के मारे वह उसे काफी छूट देती थी, बहनों को भाई की आज़ादी अखरती थी।

लड़का सीटी में फिल्मी धुन बजाता हुआ अन्दर आया। मां ने कड़ी निगाहों से उसे देखा। उलाहने की मुद्रा में दाईं बांह उठाकर पूछा—"महारानीजी कहां गायब हो गईं ? एक पहर बीत गया, मठिया से नहीं लौटीं ! लगता है, कोई उठाके ले गया !"

सीटी बजाना भूलकर लड़का नई परिस्थिति को भांपने लगा। कोने में बैठी, ढेर सारे बर्तन सामने फैलाए रखनेवाली छोटी बहन की ओर देखा। भारी बटलोई की काली पेंदी पर वह झुकी थी, छोटे इंजन की छोटी पिस्टन की तरह काली हथेली उस पर फिर रही थी। अभी छोटी बहन नहीं, उमा भाई को मशीन प्रतीत हुई।

सकपकाहट में देखकर मां ने कहा—"जा, देख, मठिया में क्या देर कर रही है ?"

"अकेली थोड़े गई है !"

"हूं, देवीजी साथ गई हैं पड़ोसवाली।"

कंठ तक आकर एक गाली भी टकराई—'छिनाल कहीं की !'

तिवारीजी और भभीखनसिंह साथ ही ड्यूटी पर निकले थे। उसके बाद ही दूध में उफान आया था। गीता की मां को सिपाहीजी की घरवाली पर ही गुस्सा आ रहा था। जी कर रहा था, आंगन से बाहर निकलकर पानी के बम्बे के नज़दीक खड़ी हो जाए और चुन-चुनकर हज़ार गालियां सुनाए।

लड़का बाहर निकलने को हुआ।

मां ने रोका—"आ ही रही होगी।"

"नहीं, मैं जाकर ले ही आऊं।" लड़के ने कहा और आगे बढ़ गया।

तिवारी की बीवी सोच रही थी—सचमुच उसे रंडी ही होना था। ऊपर से बड़ी भली बनती है, लेकिन अन्दर डूबकर पीनेवाली भगतिन लगती है मुझे तो। यह टिकेगी नहीं, भाग खड़ी होगी। भभीखनसिंह सर पीटते रहेंगे। गीता क्यों इस चुड़ैल से सटने जाती है? जो खुद ही बहत्तर घाट का पानी पीके आई है, वह किसी की लड़की-पतोहू को क्या सिखलाएगी?···ना, गीता को मैं अब निकलने नहीं दूंगी, चाहे तिवारीजी मुझे फाड़के खा जाएं! कभी-कभार एकाध कप चाय भिजवा देती है, चस्का डाल दिया है न···

चाय की याद आते ही कप का ध्यान आया। कई दिनों से चाय का जूठा कप तिवारीजी के सिरहाने पलंग के नीचे पड़ा था। तिवारीजी की बीवी ने गोद के बच्चे को हिलाकर उठाया—"जा, उमा को वह प्याला तो देता आ, धो देगी।"

उधर से उमा ने माथा उठाकर ठुनकती आवाज़ में कहा—"अब मुझसे यह सब नहीं होगा। इतने सारे बर्तन मांजते-मांजते मेरी कमर टूटी जा रही है···"

नौ साल की उमा रो पड़ी। काली हथेलीवाला एक हाथ उठाकर कुहनी से उसने आंसू पोंछे और फिर माथा झुकाकर बर्तन मलने लगी।

गोद का बच्चा प्याला लेकर आगे बढ़ आया था। इशारे से मां उसे पास बुलाने ही वाली थी कि गीता ने अन्दर पैर रखे।

देर काफी हो गई थी। मां के चिड़चिड़े स्वभाव से गीता यों भी आतंकित रहती थी। आज उसने तय कर रखा था, चाची की खातिर सब कुछ चुपचाप सुन लेगी। छोटे भाई ने बड़ी बहन पर सहमी हुई नजर डाली। उमा उसी तरह सिर झुकाए अपना काम करती रही। मां ने तो गीता की तरफ देखा तक नहीं।

कमरे के अन्दर जाकर गीता ने कपड़े बदले। बाहर आकर उमा के

पास जा बैठी। मांजे हुए बर्तनों को धोने के लिए बाल्टी के अन्दर लोटा डुबोया कि उमा उस पर बरस पड़ी—"अब कैसे आई है ! जाओ, बैठो पलंग पर, उपन्यास पढ़ो ! दाई-महरी का काम क्यों करने आई हो ?"

भरा हुआ लोटा उसने बड़ी बहन के हाथ से छीन लिया। इस तरह घूरकर देखा कि गीता सहम गई। मां से बीच-बचाव की कोई उम्मीद नहीं थी। बड़ी बहन ने झुकने में ही अपना कल्याण देखा। बोली—"उमिया, आज तू मुझे माफ कर दे !"

उधर से मां गरज उठी—"ऐसे नहीं, उमा के पैरों पर नाक रगड़ो तभी माफी मिलेगी···"

गीता ने छोटी बहन के पैरों की ओर सचमुच ही हाथ बढ़ा दिए। किन्तु काली हथेली के बीच में वर्जना की दीवार बनकर खड़ी हो गई। उमा बड़ी बहन का इतना अपमान कैसे होने देती ?

तिवारीजी की बीवी को क्रोध तो बेहद आ रहा था, लेकिन इस वक्त उसने अपने को जैसे-तैसे रोका। रोकती न तो क्या करती ? दीवार के उस पार दो सजग कान इसी ओर तो लगे थे !

'गीता की मां मन ही मन बोली—कहां से यह प्लेग का चूहा आ गई ? इसे क्या हमारी छाती पर ही उछल-कूद मचाना था ? एक शब्द भी मुंह से निकाला तो रांड़ सुन लेती है। कुछ न भी बोलो तो बच्चों से खोद-खोद के निकाल लेती है। भारी मुसीबत में पड़ी हूं। कहीं दूसरी जगह डेरा भी तो नहीं मिलेगा। उनसे कहूंगी तो लाठी उठा लेंगे···

गीता भी जुट गई। बर्तन जल्दी ही धुल गए। साड़ी के खूंट से बतासे बंधे थे। बड़ी बहन ने सभी को प्रसाद दिया। मां ने लेकिन नहीं लिया। दोनों हाथ जोड़कर मठिया की तरफ मुंह किया, फुसफुसाई—"जय महावीर, बजरंगबली ! बच्चों को सुबुद्धि दीजिए। मैं आपसे और कुछ नहीं चाहती हूं···"

और कोई वक्त होता तो बच्चे इस प्रार्थना पर शायद मुसकरा पड़ते !

चाचा का कसूर है ?

—चाची से क्यों इतना अलगाव वर्ता जाता है !

—खूबसूरत होना ही पाप है ?

—औरत होना गुनाह है ?

—चाची को घर से कौन भगा लाया था।

—ऐसी अच्छी औरत को उसने भुला दिया ?

—चाचा ने उससे शादी क्यों की ?

—वह क्या सचमुच ही नहीं रहेगी ?

—चाची का स्वभाव इतना अच्छा क्यों है ?

—वह भी गालियां क्यों नहीं बकती ?

इस तरह के बीसों सवाल थे और वे अठारहसाला छोकरी को घेर-घेरकर परेशान करते···

अठारहसाला छोकरी यानी तिवारीजी की बड़ी लड़की गीता। काफी पढ़ी-लिखी शहराती होती तो अब, ब्याह के बाद गीता पांडे कहलाती। मिस तिवारी के बदले मिसेज़ पांडे। पति को हस्ताक्षर का शौक था। उसने कई बार लिखवाकर देख लिया था—श्रीमती गीता पांडे, श्रीमती गीता पांडे, श्रीमती गी···

अक्सर वह चाची के बारे में सोचा करती···पेट के अन्दर चार महीने से 'जीव' पल रहा है। अब कहां भागेगी बेचारी ? भागना होता तो जेल

से रिहाई पाने के बाद उसी रोज़ न भाग गई होती ? बाईस-तेईस वर्ष की लड़की पचास वर्ष के मुछन्दर सिपाही की घरवाली बनकर रहने को किस तरह तैयार हुई ? तैयार क्या अपनी मर्ज़ी से हुई होगी ? बेचारी के सामने और कोई रास्ता ही न रहा होगा ?…उसे पता है, मां क्यों चाची पर इतना रंज रहती है। कई दिनों तक लगातार चाची से कहा गया लेकिन वह दामाद की निगाहों के आगे खुलकर जाने को राज़ी नहीं हुई। मां ने खीझकर अकेले में उस क्वार्टरवाली नानी से कहा था—छिनाल यहां भभीखनसिंह की रखैल बनके सती-सावित्री का नाटक कर रही है, मैं इन कलमुहियों की रग-रग पहचानती हूं…

(नहीं मां, चाची को तुम इतनी गालियां न दो ! पहले जनम में बेचारी ने जाने किसका क्या बिगाड़ा था ! अब इस जनम में उसे तुम इतना सराप क्यों देती हो मां ?

(जरूर चाचा ने चाची का रुख नापा होगा। चाचा ही नहीं चाहते होंगे कि उनकी घरवाली तिवारी के दामाद से बोले-बतियाए।

(मां चाचा पर क्यों नहीं अपना गुस्सा झाड़ती है ?

(मर्द पर झाड़ेगी गुस्सा ? चबा जाएगा !

(मैं अपने मर्द पर नही झाड़ूंगी गुस्सा…

(चाची लेकिन सारा गुस्सा घोट के पी गई हैं, उनको कहां कभी रंज देखा है !

(उदास ज़रूर देखा है चाची को…

(मैंने चाची को रोते भी देखा है। रोती हैं तो उनका चेहरा लाल हो जाता है।

(हम अक्सर साथ-साथ सोते हैं। चाची को मैं गुरुआइन मानती हूं। वे लेकिन मुझे अपनी चेली नहीं मानती हैं। कहती हैं, सहेली के बिना दिन कैसे कटेंगे ! चार वर्ष छोटी हो तो क्या हुआ ?

(चाचा की मूंछों पर एक बार मैंने मुंह बनाया, बोली, मइया री !

इतनी भकरार मूंछें ! तुम्हें डर नहीं लगता चाची ?

(उन मूंछों को छोटी करवा लो चाची ! तुम पड़ जाओगी तो सब हो जाएगा। तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन है जो चाचा को आदमी बनाएगा ?

बाहर बरामदे में तख्तपोश पर दोनों बहनें थीं। उमा कब की सो चुकी थी लेकिन गीता को नींद नहीं आ रही थी। पलकें झिपी थीं, अन्दर अनाप-शनाप खयाल चक्कर लगा रहे थे। मां, दोसाला छोटू और बारहसाला दिनेश अन्दर पलंग पर गहरी नींद में थे। सर्दी थी। बहुत नहीं, मामूली।

उमा ने करवट ली तो रज़ाई का आधा तख्तपोश से नीचे झूल गया।

नौ साल की छोटी बहन गाढ़ी नींद में सोई थी। उमा की जांघ पर हाथ फेरते-फेरते गीता सोचने लगी···

(मां क्यों तुमपर रंज है ?

(तुमने उसके स्वार्थ को धक्का पहुंचाया न !

(स्वार्थ ? मां का कौन-सा स्वार्थ था ?

(दामाद का मनोरंजन···मेरी और कोई सहेली होती तो यह काम मां उसीके हवाले करती !

(चाची, अपना दिल तुमने किसीको दे रखा है ?

(मठिया से हम वापस आ रहे थे, तुम कितनी खुश थीं ! आज तुम्हारी खुशी दबाए नहीं दबती थी···

(वह क्या सचमुच ही तुम्हारे मामा का लड़का था ?

(नहीं ! अच्छा, न बताओ चाची !

(तुम्हें मेरी कसम ! बतला भी दो···

(देखो चाची, तुम मुसकरा रही हो···

[अब तू मुझे मुसकराने भी न देगी ?

(क्यों नहीं चाची, खूब मुसकराओ ! खिलखिलाकर हंसो न ? ज़रा-

ज़रा-सी मुस्कान के भला क्या मतलब होते हैं ? खुलकर हंसो न ! खूब खुलकर हां चाची ! इस तरह खिलखिलाओ कि चाचा के क्वार्टर की छत फट जाए !

(सच, इतना खुश तो मैंने कभी तुम्हें देखा नहीं !

(वह कौन था चाची ? मामा का लड़का ? सच ?

[सच ! अपनी कसम गीता !

(नहीं, मेरी कसम खाओ चाची ! कहो 'गीता की कसम, वह मामा का लड़का था'···

[और मैं अगर झूठी कसम खा लूं गीता ?

[और मैं अगर बतला ही दूं कि···

[और मैं अगर···

(नहीं, चाची ! नहीं ! मत खाओ कसम···क्यों खाओगी कसम ? झूठी कसम तो बिलकुल मत खाओ ! यों भी कसम न खाओ···न अपनी, न मेरी; न उनकी, न इनकी···

(चाची एक बात पूछूं ?

(तुम डूब क्यों न मरीं चाची ?

(नहीं डूबने दिया गया ? हाय राम, यह भी होता है चाची ? कोई डूबना चाहे और लोग उसे डूबने न दें ?···

दो-तीन बार करवटें बदली गीता ने।

तीसरी बार मां ने उधर से डांटा—"सोती क्यों नहीं ?"

"सो तो रही थी।" गीता ने ज़वाब दिया।

मां उधर से बोली—"रात को झूठ बोलती है, दिन को भी झूठ बोलेगी···"

"हुं," गीता ने कहा, "तुमको सारा संसार झूठा ही झूठा नज़र आता है मां !"

"कल दिन-देखार में लड़ लेना मुझसे," मां ने कहा, "अभी तो सो

जाइए महारानीजी !"

अब गीता ने उमा से कहा—"हट् अपना सारा बोझ क्या मुझीपर डालेगी ?"

उमा ने उसके बदन पर से जांघ तो हटा ली, लेकिन एक आदेश लाद दिया—"प्यास लगी है बहन, पानी पिलाओ···"

पाकड़ के नीचे किसीने दो ईंटें रख दी थीं। एक पर एक।

भभीखनसिंह पहला राउण्ड मारने आए तो ईंट पर बैठकर पाकेट से तम्बाकू निकालने लगे। तम्बाकू की पत्ती का एक टुकड़ा हथेली पर रखके उसे खोंटने लगे। आज दुपहर को बाज़ार गए थे। घंटाघर से पहले ही लहेरियागंज पड़ता है। सिपाहीजी का अपना एक पुराना सौदागर है, उसीसे तम्बाकू के पत्ते लाते हैं। आज भी लाए थे। लेकिन अभी तम्बाकू के जिस टुकड़े को खोंट रहे थे, वह पन्द्रह रोज़ पहले लाए थे।

सुर्ती मसलते-मसलते सिपाहीजी को बूढ़े मिस्त्री का ध्यान आया··· वह अच्छी मरम्मत करता है, स्टोव को इतना अच्छा बना देगा कि उगनी चाहे तो उसीपर खाना बनाएगी। उसकी दुकान में खम्भे में दीवाल घड़ी टंगी है। छोटा कांटा सात पर था। सिपाहीजी ने मुसकराकर मिस्त्री से पूछा था—कहां से ले लाए हैं? बड़ा अच्छा वक्त देती है! ···मिस्त्री को भी हंसी आ गई। दरअस्ल ग्यारह बजे थे। टार्च के स्प्रिग को ठीक कर रहा था, निगाहें उसीपर भिड़ी थीं। मिस्त्री ने कहा—सिपाहीजी, इस तरह हंसिएगा नहीं, नाराज़ हो जाएगी! बड़ी लाडली है, शहर के एक बूढ़े रईस की मुहब्बत में पगी हुई। पिछले बीस वर्षों से इन्हीं हाथों से इसका इलाज चलता रहा है···कल फिर इलाज के लिए आई है···

मिस्त्री की उस बात पर इस वक्त भी भभीखनसिंह को हंसी आ रही थी। मिस्त्रीजी की उम्र और सिपाहीजी की उम्र लगभग एक-सी है। वह

काम में तो उस्ताद था ही, बातचीत करने की कला का भी मास्टर था। सिपाही को बार-बार हंसी आ रही थी—कैसी चतुराई से उसने पुरानी घड़ी को बूढ़े रईस की रखैल बनाके बात कही थी ! उसकी दुकान में दूर-दूर के गाहक पहुंचते हैं। स्टूल पर बैठकर मिस्त्री विधाता की अपनी ड्यूटी में मुस्तैद रहता है। इर्द-गिर्द दुनिया-भर का कबाड़ा जमाए रहता है। कोई भी शौकीन तबीयत का गाहक उसकी दुकान पर शायद ही जाता हो। बाबू भभीखनसिंह तो पुरानी लालटैन का बर्नर तक उसीसे दुरुस्त करवाते थे। आज जाने कहां से उसकी दुकान में रेडियो की आवाज़ आ रही थी। सिपाहीजी ने पूछा तो बोला नहीं कुछ, बकरीवाली छोटी दाढ़ी हिलती रही और वह मुसकराता रहा। शायद उसकी दाईं ओर मटमैले तारों का जो गुच्छा उलझा पड़ा था उसीसे रेडियो की आवाज़ निकाल रहा था !

खैनी मसलते-मसलते सिपाहीजी की आंख एक बार और चमकी। मिस्त्री खिजाब लगाता है···एक बार उसने सिपाहीजी से भी कहा था—जमादार साहब, दुनिया की निगाहों को जंचे तो हम कुछ भी लगा सकते हैं ! ज़रूर उसने भी बुढ़ापे में शादी की होगी, पहले न सही।

भभीखनसिंह जान-बूझकर सुर्ती धीरे-धीरे तैयार कर रहे थे। तिवारी राउण्ड पूरा करके आनेवाला था। यहीं बैठकर थोड़ी देर तक दोनों जने बातें करेंगे और इत्मीनान से सुर्ती थूकते रहेंगे।

ज़रूर तिवारी जनरल वार्ड में नए कैदियों का हुलिया नाप रहा होगा। तिवारी की आदत है। एक भी नया कैदी सीखचों के अन्दर दिखाई पड़ा कि तिवारी उसकी जन्मकुण्डली के लिए बेताब हो उठता है। जनरल वार्ड में न सही, हाजत में कोई न कोई चूहा तिवारी को मिल जाता है···

तिवारी नहीं आया। भभीखनसिंह ने सुर्ती फांक ली।

मौसम में आज पहली बार चांद इतना फीका लगा था। कुहरा

चांदनी को खुलकर नीचे आने नहीं दे रहा था। पाकड़ के पत्ते बिजली की रोशनी में कल की तरह चमक नहीं रहे थे। साठ यूनिट के बड़े बल्ब के प्रकाश को जाने किसने डांट-फटकार कर मद्धिम कर दिया था।

सामने जेल का गोदाम था। गोदाम की सफेद दीवार पर अपनी परछाईं देखकर भभीखनसिंह क्षण-भर के लिए रुके। गर्दन टेढ़ी करके परछाईं के अन्दर मूंछों को प्रतिबिम्बित होने दिया।

परछाईं में मूंछों की नोंक देखकर उन्होंने हाथ उठाया ही था कि एक मोटा चूहा नजर आया। वह गोदाम की लम्बी दीवार से लगी हुई सूखी नाली में से होकर आगे बढ़ा था।

भभीखनसिंह ने लाठी संभाली। फुर्ती से चूहे की ओर बढ़े। बिलकुल करीब पहुंचकर चूहे पर निशाना जमाया। लाठी के दोनों छोर लोहे के मोटे पत्तर से मढ़े हुए थे। निशाना ठीक जमा और चूहे की कचूमर निकल गई।

भभीखनसिंह ने झुककर देखा, उसकी जीभ और दांत निकल आए थे। छटपटा रहा था। गुस्से में सिपाहीजी चूहे को सम्बोधित करके बोले—"साला, पब्लिक का अनाज बर्बाद करता था! मैं अरसे से तेरी फिराक में था, चोर कहीं का।...अब कैसे दम तोड़ रहा है!"

समाज की सम्पदा को बर्बाद करनेवाले उस दुष्ट प्राणी की कपाल-क्रिया करके भभीखनसिंह आगे बढ़े तो सीना तन गया था। अब वे इतमीनान से मूंछों पर हाथ फेर रहे थे।

छोटा बाबू जाने क्यों आज ड्यूटी पर नहीं था। उसका विनोदी स्वभाव सिपाहीजी को बड़ा अच्छा लगता था। वह मखौल भी उनके लिए एक प्रकार का भोजन ही था। आज परिहास का यह 'उप-आहार' नहीं मिला था। बार-बार छोटे बाबू पर ध्यान जा रहा था...क्या पता, चाचा के साथ कहीं निकल गया हो छोटे बाबू। आज छोटे बाबू का अभाव भभीखनसिंह को पहली बार अखरा।

खाना पकाकर उगनी मठिया चली गई थी। अकेले खाना खाते समय बार-बार उसकी याद आई थी। खाते वक्त वह सामने मौजूद होती तो निश्चय ही डेढ़-दो रोटियां और खा गए होते। अब सिपाहीजी को लग रहा था कि भूखे हैं। छोटे बाबू की परिहास-प्रियता जो खुराक जुटाती थी आज वह भी नहीं मिली थी···कुछ भी हो, यह पढ़ा-लिखा नौजवान भभीखनसिंह की इज़्ज़त भी तो करता था। मन ही मन उन्होंने उसे हमेशा बेटा-भतीजा समझा।

पगला वार्ड में आज एक पागल कैदी लाया गया था। दो-चार दिनों के अन्दर ही उसे कांके भेजनेवाले थे। एकाएक भभीखनसिंह के मन में यह बात आई कि पगलवा से गप-शप करें।

अस्पताल वार्ड के निकट सेलोंवाला वार्ड था। वहीं एक सेल के अन्दर उसे रखा गया था। दरअसल, पागलों के लिए कोई अलग वार्ड नहीं था। पागल कैदी थे भी नहीं। कभी-कभार एक-आध पागल दो-चार रोज़ के लिए बन्द किया जाता था। उसकी मौजूदगी में कुछ लोग सेल को ही 'पगला वार्ड' कहते थे।

सेलोंवाले गलियारे में चालीस यूनिट के दो बल्ब आमने-सामने लगे थे। एक छोर पर पागल था, दूसरे छोर पर कोढ़ी। इधर से पागल शोर मचाता तो उधर से कोढ़ी 'राम-राम' की गुहार करता!

सिपाहीजी सीखचों से सटकर खड़े हुए तो पगलवा कागज़ों के टुकड़े फैलाकर दीवाल की ओर मुंह किए बुदबुदा रहा था—थर्टीन, फोर्टीन, फिफ्टीन, सिक्सटीन···कागज़ के टुकड़ों को इतने अधिक ताव में पटक रहा था मानो वे ताश की वज़नदार पत्तियां हों!

भभीखनसिंह ने फर्श पर लाठी ठोंकी, कहा—"ऐऽऽ, क्या नाम है तेरा?"

उसने ठहाके लगाए। ज़रा देर के लिए आंखें फैलाकर सिपाहीजी को देखता रहा फिर उठकर खड़ा हो गया। कैदियोंवाले धारीदार ये कपड़े

निश्चय ही उसे आज ही दिन में दिए गए होंगे। कुरता इतनी ही देर में उसने फाड़ डाला था। सीने से नीचे दो हिस्सों में कुरता झूल रहा था। बांहें लेकिन दुरुस्त थीं। पायजामा उधर कोने में पड़ा था। आदिमानव की सनातन भूमिका में वह भभीखनसिंह के सामने खड़ा था।

अपनी देहाती बोली में वह बोला—"वो देखो, सुपरिंटेंडेंट के लिए मैंने अपना पायजामा उतार दिया है। तुम इसे लेते जाओ···"

पागल ने कोने में रखा हुआ पायजामा उठा लिया और उसे सीखचों के पास ले आया। लगता था, भभीखनसिंह को थमाकर ही दम लेगा।

"ससुर कहीं के !" भभीखनसिंह ने सुर्ती थूककर कहा तो उसने फिर ठहाके लगाए।

"ससुर 'नहीं, मैं तुम्हारा साला मानता हूं अपने को। मेरी बहन भाग गई थी, मैंने उसकी बड़ी खोज की। ज़रूर वह तुम्हारे साथ रहती है। रहती है न ?"

यह सुनते ही भभीखनसिंह सुन्न पड़ गए। लगा कि काठ मार जाएगा। लगा कि लाठी हाथ से गिर पड़ेगी। लगा कि इतना पसीना छूटेगा, इतना छूटेगा कि खाकी कपड़े गीले हो जाएंगे, ऊपर का ऊनी स्वेटर भी भीग जाएगा। लगा कि भारी ओवरकोट जमकर पत्थर हो जाएगा···

और सचमुच सिपाहीज़ी ने पागल के चेहरे की ओर गौर से देखा··· कहीं इसका चेहरा उगनी से तो नहीं मिल रहा है ? कहीं इसके शरीर का ढांचा···मगर भाई-बहन भी तो अक्सर एक-से चेहरेवाले नहीं होते ! ···

पागल ने फिर ठहाके लगाए और लोहे की सलाखों से आकर सट गया। दो छड़ों को दोनों हाथ से थामे, बड़ी-बड़ी आंखों से उसने भभीखनसिंह को देखा। वे चार कदम पीछे हटकर लाठी के सहारे खड़े हो गए थे। कैदी ने चुमकारकर उन्हें पास बुलाया। कहने लगा—"तुमने

ठीक कहा था मैं तुम्हारा ससुर ही लगता हूं। मेरी बहन-वहन नहीं कभी भागी। बहन भागती तो मैं उसे गोली मार देता···" उसने बांहें उठाकर हथेलियों को सिकोड़ लिया, उंगलियों की ऐसी मुद्रा बनाई मानो पिस्तौल चलाएगा।

सिपाहीजी ने सोचा, इसकी कौन बात सच थी ? पहली या दूसरी ?

फिर उन्होंने हनुमानजी की याद करके लाठी पटकी। मन के भ्रम को झाड़कर हल्के हुए—इस ससुर की बातों को सच मानना पागलपन होगा···

लौट पड़े। निश्चय किया, जब तक, पगलवा रहेगा, इधर नहीं झांकेंगे।

लगता था कि अब वे भी जनरल वार्ड की ओर जाएंगे। लेकिन पैरों ने उन्हें ज़नाना वार्ड की ओर बढ़ा दिया। क्या पता वह हत्यारिन कल-परसों तक चली जाए !

बीच में ही तिवारीजी मिल गए। बोले—गंडक के किनारे डाका पड़ा था न ? उस मुकदमे में सोलह आदमियों को आज अदालत ने सज़ा सुना दी। सबके सब जनरल वार्ड में पहुंचा दिए गए हैं। मैं तुम्हें खोज रहा था भभीखन भाई, चलो उनकी बातें सुनें। मैं तो वहीं था। दो-चार तो उनमें से पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हैं···"

भभीखनसिंह ने कहा—"तुम चलो, मैं दस मिनट में आता हूं। बस, ज़नाना वार्ड बाकी रह गया है।"

तिवारी ने डिबिया से तैयार सुर्ती निकाली। हथेली आगे बढ़ाकर लेने का आग्रह किया। भभीखनसिंह ने आगे बढ़कर चुटकी-भर खैनी उठा ली, उसे अपने होंठों के हवाले किया। आंखें नचाकर बोले—"नई लाए हो न ? मैंने पाकड़ के नीचे बड़ी देर तक तुम्हारा रास्ता देखा···"

फिर उन्होंने तिवारी से चूहेवाली बात बताई। आंखें चमक रही थीं।

साथी की इस खुशी को तिवारी ने उत्साह में नहीं लिया। बोला—"अपना क्या बिगड़ता था? नाहक तुमने एक जीव की हत्या कर दी!"

भभीखनसिंह की भौंहों में तनाव पड़ गया। चलते-चलते बीच में ही पैर ठिठक गए। सीने का पूरा बोझ लाठी पर डालकर उन्होंने तिवारी की ओर पैनी निगाहों से देखा। कहने लगे—"सुनो तिवारी, देश की दौलत को नुकसान पहुंचानेवाला हमारा वैसा ही दुश्मन है जैसाकि हमारी सीमाओं के अन्दर घुस-पैठ करनेवाला। हम न उसको छोड़ेंगे, न इसको छोड़ेंगे।"

तिवारी ने अपनी लाठी को बांहों के सहारे पीठ पर उलझा लिया और एक खास अदा में आगे बढ़ता हुआ बोला—"चूहों पर अपनी बहादुरी दिखाना बेकार है। कहते हैं, चूहोंवाले घर में लक्ष्मीजी का निवास रहता है···"

"लक्ष्मीजी का नहीं, दलिद्रा का निवास रहता होगा!"

"कैसा भी कहो, तुमने अच्छा नहीं किया भभीखन भाई!" तिवारी ने थूकते हुए कहा। भभीखनसिंह ने उसकी ओर देखा। सोचने लगे—ऐसे लोगों का वश चले तो सारा देश चूहों के हवाले कर दें!···

इस सिलसिले में भभीखनसिंह को उगनी की वह बूटेदार चोली याद आई जिसे चूहे ने काट दिया था। सुर्ख ग्राउण्ड पर सफेद बूटोंवाली यह नफीस चोली मोरछाप नीले किनारोंवाली गुलाबी साड़ी के साथ ही पाकिस्तान के पूर्वी सीमान्त के पास रहनेवाले भानजे की तरफ से नवेली मामी के लिए आई थी। उतनी अच्छी चोली छूकर भभीखनसिंह ने जीवन में पहली बार देखी थी और मन ही मन उसे बेहद पसन्द किया था। उगनी ने लेकिन दो ही चार बार वह चोली पहनी होगी। जाने कैसे चूहे ने उसे काट दिया! उगनी को इसका रत्ती-भर अफसोस नहीं हुआ। गीता ने अपनी ओर से इतना ज़रूर कहा था—"चाचा, घंटाघर

वाले मार्किट से चोली का कपड़ा चाची के लिए मंगवा दीजिए, वे खुद तो कहेंगी नहीं।" पतिदेव लेकिन इस इन्तज़ार में थे कि पत्नी अपने मुंह से कहेगी तो एक क्या, चार चोली के लायक कपड़ा मंगवा देंगे, वही सफेद बूटोंवाली सुर्ख ग्राउण्ड का कपड़ा···यह नहीं हो सका क्योंकि उगनी ने अपने मुंह से नहीं कहा था। वाकी दस औरतों ने जिस चोली की प्रशंसा की थी, उसीके वारे में उगनी की यह चुप्पी कभी भभीखनसिंह की समझ में नहीं आई! जो हो, चूहे वड़े वदमाश होते हैं। भभीखनसिंह का वश चले तो एक भी चूहा कहीं दिखाई न पड़े!···

तिवारी जेल की दीवारों के किनारे-किनारे अन्दर की पूरी परिक्रमा के लिए आगे वढ़ा। भभीखनसिंह चुपचाप ज़नाना वार्ड की ओर चले।

जूंओं ने उसे परेशान कर रखा था। जाने कबसे बाल नोच रही होगी! फाटक की ओर रुख किए उकड़ूं बैठी थी और दोनों हाथ वालों के जंगल में उथल-पुथल मचा रहे थे। दस में से एक भी उंगली आराम नहीं ले रही थी। दांतों पर दांत जमाकर वह उस मोर्चे पर भिड़ी थी।

भभीखनसिंह ने देखा तो उन्हें दया आई उसपर। कहने को आमने-सामने बैठी थी लेकिन परेशानी के मारे आपे में नहीं थी। दो-चार रोज़ वाद सेण्ट्रल जेल ले आएंगे तब शायद इसके वालों की सफाई का मौका आएगा।

सिपाहीजी ने सोचा—सेण्ट्रल जेल का डाक्टर अगर हमदर्दी से न भी काम ले, खाली समझदारी का भी परिचय दे तो इस औरत को जूंओं से छुटकारा मिल जाए। तेल-सावुन के इस्तेमाल में झमेला रहेगा, इन वालों को कटवा ही दिया जाए! दस साल वाद रिहा होगी तो अपना शौक-सिंगार कर लेगी, चार-छः महीने में वाल फिर वढ़ा लेगी और फैशन मारेगी।

कमरे में आधी दूर तक विजली की रोशनी पहुंच रही थी। जहां अंधेरा था उधर भी प्रकाश का आभास था। सलाखों की लम्बी परछाइयों

को चीरते हुए दो झींगुर गश्त लगा रहे थे, भभीखनसिंह की निगाहों ने उनका पीछा किया। एक काला चींटा अंधेरे से आकर रोशनी की तरफ बढ़ा तो झींगुरों से उसका मुकाबला हुआ। चींटे की काली छाया सामने सरक आई तो एक झींगुर क्षण-भर के लिए सहमा-सा रुका रहा, फिर बगल काटकर निकल गया। दूसरे ने भी वैसा ही किया।

भभीखनसिंह ने सोचा—जीव-जन्तु चाहे कितने छोटे हों, अपने काम लायक समझदारी उनमें ज़रूर रहती है। झींगुर चाहें तो चींटे को घेरकर परेशान कर सकते हैं। लेकिन उन्हें नाहक छेड़छाड़ पसन्द नहीं। बाघ भी भूखा रहता है तभी हमला करता है या फिर घबराहट में पड़कर पंजा मार बैठता है···झींगुर देर तक गश्त लगाते रहेंगे। चींटा उनके बीच से आता-जाता रहेगा। लगता नहीं है कि वे आपस में उलझेंगे।

पाकिट से तम्बाकू निकालकर वे उसे हथेली पर खोटने लगे। लाठी फाटक की बगल में दीवार से टिका रखी थी। उस औरत से उन्होंने पूछा—"नहाती क्यों नहीं? बालों में चिकनी मिट्टी मसल के कभी-कभी नहा लिया करेगी तो इस तरह सर नहीं खुजलाना पड़ेगा···"

"ईह, जाड़े में इन्हींके कहने से कोई नहा लेगी।" वह तुनक के बोली और पलट के बैठ गई।

"बड़े जमादार से कहकर मैं तेरे लिए पानी गरम करवा दूं तो?"

इसका उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिपाहीजी समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे दस साल यह जेल में रहेगी, निश्चय ही बीमार पड़ेगी और कमजोर होती जाएगी···टी० बी० भी हो सकता है, मर भी सकती है! नहीं, मरेगी नहीं। ऐसी औरतें भारी कठजीव होती हैं। सूखकर लक्कड़ बन जाएंगी फिर भी प्राण-पखेरू को सांसों में रोके रहेंगी। मर्द इतना नहीं झेल सकता, वह 'टन्न' से टूट जाएगा···दस वर्ष बाद जब वह जेल से निकलेगी, दस-बीस बाल ज़रूर पक चुके होंगे। नहीं भी पक सकते हैं। भभीखनसिंह की मौसी सत्तर पार कर गई, उसके बहुत थोड़े बाल पके हैं।

पचास की थी तब तो एक भी रुपहला बाल सिर पर नहीं था···यह सांवली सूरत की पतली-छरहरी औरत है, इसके बाल पचास तक पकने लग जाएंगे। ठिगनी होती तो मौसी की तरह बुढ़ापे को साठ साल की उम्र तक अंगूठा दिखाती। तो जेल से निकलने के बाद इसका क्या होगा? यह अपने को रंडियों के बाज़ार में पहुंचा देगी? उमर ढल चुकी होगी, शादी तो कोई इससे करेगा नहीं!

भभीखनसिंह के ध्यान में उगनी आ गई थी! लगा कि पैंतीस-चालीस वर्ष की उगनी सामने खड़ी है, भीख मांग रही है। चेहरे का पानी उतर चुका है, आंखें धंसी हुई हैं। मैला-फटा आंचल फैलाकर वह कुछ मांग रही है···

कल्पना की यह उगनी सिपाहीजी को अच्छी नहीं लगी। भला, उगनी आगे संकट में क्यों पड़ेगी? भभीखनसिंह के नाम पर पुश्तैनी जायदाद कम नहीं है। चार बीघा ज़मीन है, आम का बगीचा है, छोटा-सा पक्का कुआं है, दो बैल हैं, एक भैंस है, खपरैल का मकान है···यह दूसरी बात है कि छोटा भाई खोटी तबीयत का है। भाई की नीयत नहीं है कि भभीखनसिंह कभी गांव आके रहें, अपने हिस्से की जायदाद संभालें। लड़का हो चाहे लड़की, अगले आसिन में भरी गोदवाली उगनी को साथ लेकर वे अपने गांव पहुंचेंगे और चार-छः महीने के लिए परिवार को वहीं छोड़ आएंगे। अपने गंवई जीवन की भावी असुविधाओं पर सोचते-सोचते उन्होंने सुर्ती थूकी और लाठी उठाकर पीछे लौटे।

(छोटा भाई भारी दुष्ट है। उसने कहीं भाभी को अपनी मुट्ठी में कर लिया तो जुलुम होगा! ज़नाना की ज़ात, क्या ठिकाना है इनका? सिखाने-पढ़ाने पर अपने मर्द को उगनी ज़हर नहीं देगी?

(नहीं, उगनी ज़हर नहीं देगी। और चाहे कुछ करे, यह भभीखनसिंह की जान नहीं लेगी। कोख में सात महीने का बच्चा लेकर वह भाग भले ही जाए मगर किसीको ज़हर नहीं खिला सकती। खुद ज़हर खाके हमेशा

के लिए सो जाएगी, सो होगा···

(लेकिन उगनी को लेकर वे देहात जाएंगे ही क्यों ? क्या ज़रूरत है देहात लौटने की ? ज़मीन-जाल बेचकर रकम ले आएंगे, दो कट्ठा ज़मीन यहीं कहीं आसपास खरीद लेंगे। आहिस्ता-आहिस्ता ईंटों का जुगाड़ होगा, ढाई-तीन कमरोंवाला घर क्यों नहीं तैयार होगा ? ऊपर छत न सही, खपरैल ही सही।

(उगनी मां बन जाएगी। भभीखनसिंह तीन चाबियों का गुच्छा अपने जनेऊ में नहीं बांधेंगे, उसे वे अपनी घरवाली के हवाले कर देंगे। रामजी की दया होगी, दूसरी बार भी उगनी के पैर भारी होंगे और तीसरी बार भी···नहीं, ज़्यादा बच्चे न हों ? एक लड़का, एक लड़की···और बच्चा तो बिलकुल नहीं चाहिए। दो से ही नेम-धरम निभ जाएगा।

(ज़्यादा तो नहीं हैं, ढाई-तीन हज़ार रुपये जेल के खज़ाने में जमाकर रखे हैं। बेर-वक्त पर रकम काम आएगी। उगनी आई है तो खर्चा भी बढ़ा है। पहले तीस-चालीस में खींच ले जाते थे, अब उतनी रकम और लग जाती है। किसी महीने में पचहत्तर, किसी में सत्तर, और कभी-कभी अस्सी भी बच जाते हैं।

(तिवारी की बीवी ने कहलवाया था। उगनी अस्पताल जाएगी और पांच-सात रोज़ वहां रहेगी, इसमें रोज़ाना दस रुपये का नोट ज़रूर उड़ेगा। ज़च्चा-बच्चा के लिए आगे भी महीनों तक पथ-परहेज़ और पुष्टई का काफी सर-सामान लगेगा···भभीखनसिंह अभी से तैयार हैं। मुट्ठी खोलनी होगी तो बिना किसी हिचक के खोलेंगे मुट्ठी। पिछले साल मां मरी थी, श्राद्ध में पन्द्रह सौ लग गए। चार वर्ष पहले भानजी का ब्याह हुआ तब भी एक हज़ार का बोझा उठाना पड़ा था।···

बिजली की रोशनी में अपनी परछाईं से बातें करने का जी कर रहा था भभीखनसिंह का···एक उड़न्तू चिड़िया को पकड़ लाए थे, उसे घोंसले में डाल रखा था। वह अंडा देनेवाली थी···कहीं वह बीच में ही फुर्र से उड़

तो नहीं जाएगी ? कहते हैं, अंडा देना होता है तो चिड़िया घोंसला नहीं छोड़ती। उनकी गौरैया अब कहां जाएगी घोंसला छोड़कर ? उड़ना होता तो पहले ही उड़ चुकी होती···

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे क्वार्टरों में अफवाह गर्म हो उठी···उगनी का माथा खराब है ! और कैसे, अफवाह अपने-आप ठंडी पड़ गई !

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे महीनों तक वह काबू में नहीं आई···कैसे अगले दो दिन, दो रात उगनी रोती रही, भूखी रही दो दिन, दो रात ! और कैसे तिवारी की बड़ी बेटी (गीता) आरजू-मिन्नत करके उसे खाना खाने के लिए मना सकी !

भभीखनसिंह को याद आया : मठिया के बाबाजी ने कैसे जजमानिन के ग्रहों की शान्ति के लिए रामायण का 'नवाह' पाठ किया था ! और कैसे तिवारी ने आसिन की 'नवरात्र' में दसों दिन चंडी का पारायण करवाया था। और कसे हवन के अन्त में सिपाहीजी और उनकी घरवाली के हाथों पूर्णाहुति दिलवाई थी अग्निकुण्ड में !

भभीखनसिंह को याद आया : कैसे कातिक की पूरनमासी के दिन तिवारीजी की बीवी ने शुभ समाचार सुनाकर इन कानों में अमृत घोल दिया था ! और, कैसे वे घंटाघर जाकर सेर-भर रसगुल्ले और गुलाब-जामुन उठा लाए थे···और कैसे उगनी ने मिठाई का एक टुकड़ा भी अपने मुंह के अन्दर जाने नहीं दिया था···

सोचते-सोचते माथा फटने लगा।

सिपाहीजी ने तय किया, आज अब राउण्ड नहीं देंगे। अस्पताली वार्ड के चबूतरे पर जाकर लेट जाएंगे। नींद नहीं भी आएगी तो भी आंखें मूंदे पड़े रहेंगे।

सिपाहीजी को थकान महसूस हो रही थी। बंबे से अंजुरी भिड़ाकर उसमें मुंह लगा दिया, जी-भर पानी पीकर अस्पताली वार्ड की ओर बढ़

आए। अभी-अभी घड़ियाल को एक बार ठोंका गया था।

ऊंची दीवार को पार करके मशीनी चिराई की अविराम सर्राहट हमेशा की तरह इस समय भी आ रही थी। सेलों की तरफ से कुहरे को चीरकर फिल्मी धुनों के मिक्सचर अभी-अभी तरंगित हो उठे थे, यह चमत्कार ज़रूर ही पागल के गले का था।

वह भी क्वार्टर था। यह भी क्वार्टर है।

वह क्वार्टर था, लाल ईंटोंवाला। पुराने ढर्रे का तंग। उसमें इतने बड़े-बड़े जंगले कहां थे। सीमेण्ट का ऐसा बढ़िया फर्श कहां था उसमें ! न नल था, न नहाने का घर, न पाखाना। पचास वर्ष पहले का बना होगा।

यह भी क्वार्टर है। बाहर सफेद, भीतर सफेद। नये ढर्रे का, खुला-खुला। खूब हवा आती है, धूप भी खूब आती है। फर्श इतना अच्छा, इतना चिकना कि तबीयत खुश हो जाती है देखते ही। पानी की इफरात। बढ़िया बाथरूम। फ्लशवाला पाखाना। हाल-हाल बनके तैयार हुआ है। चार ही छः महीने हुए हैं। भाभी की छोटी बहन के पति के नाम अलाट किया गया है। वह ओवरसियर है, ढाई सौ रुपये पाता है···

भाभी ने खिलखिलाकर कहा—"जंगल में नहीं भगा लाई हूं। अठारह सौ क्वार्टर हैं। यहां इन्दिरा अकेली नहीं है। हज़ारों इंदिराएं बाल-बच्चों के साथ रहती हैं। मेरी बहन के तो एक ही लड़का है। वह तुम्हें परेशान नहीं करेगा। परेशान करेगा कामेश्वर···मगर कामेश्वर तो जेल से इन्सान बनके बाहर निकला है, वह क्या किसीको परेशान करेगा !"

उगनी बड़े गौर से भाभी की बातें सुन रही थी। आज चेहरा खिला हुआ था। रास्ते की थकान कल ही उतर चुकी थी। भाभी के हाथ में दातुन थी, वे उगनी के कंधों पर झुक आईं। बोलीं—"बाप रे ! परसों और कल कितना सोई हो तुम ! कुंभकर्ण की तरह ! नहीं ?"

प्रश्न में भाभी की आंखें बड़ी-बड़ी हो गईं।

"आज भी सोऊंगी," उगनी ने कुर्सी की पीठ के सहारे खड़ी भाभी को अपनी उल्टी बांहों के घेरे में ले लिया और कहा—"सोती रहूंगी, शाम तक सोऊंगी। देखना मुझे कोई जगाए नहीं।"

उसके माथे पर अपनी ठोड़ी टिकाकर भाभी बोलीं, फुसफुसाकर—"कामेश्वरी को और कौन जगाएगा, कामेश्वर ही जगाएगा!"

"कामेश्वरी कहां! मैं तो उग्रतारा हूं!"

"एक देवी के सौ नाम, हज़ार नाम! मेरे नाना भारी पण्डित थे, वही कहा करते थे···"

"नहीं भाभी, तुम लोग मुझे सीधी-सादी उगनी ही रहने दो! न उग्रतारा, न कामेश्वरी, न देवी···"

"नाम में क्या रखा है पगली?"

स्टोव पर केतली थी। चाय का पानी खौल रहा था। आलमूनियम की छोटी-सी परात पड़ी थी स्टोव के पास ही, गुंधा आटा ढका था भीगे कपड़े से।

पूस का सवेरा। जाड़े की धूप। दक्खिन रुख का बरामदा। नाश्ते की तैयारी।

सुबह-सुबह महरी आई थी, वर्तन धो-पोंछके रख गई है, किचन और आंगन का फर्श धो गई है। उगनी छः बजे ही नहा चुकी थी।

भाभी बाथरूम के अन्दर से बोलीं—"कामेश्वर को देर भी लग सकती है, हम क्यों न नाश्ता कर लें? तुमको भूख नहीं लगी है? मुझे तो ज़ोरों की लगी है। दो-चार परांठे तल लो। आले में मर्तबान होगा। मिर्च का अचार निकाल लो!"

उगनी स्टोव के पास बैठ चुकी थी।

पहला परांठा उतारा ही था कि बाहर खट-खट की आवाज़ हुई।

दूधवाला था। मूंछोंवाला अधेड़।

उगनी पतीला लेकर आगे बढ़ी, ध्यान में बाबू भभीखनसिंह आ गए थे। सोचा, रोज़ दूध देने आएगा और रोज़ ये मूंछें सिपाहीजी की याद दिलाएंगी। रंग लेकिन इसका सांवला है, सिपाहीजी का गेहुआं। उनकी डील-डौल भी अच्छी है, नाक-नक्श भी अच्छे हैं···भाभी ने कल ही इससे कह दिया है। हां, अभी सेर-भर दूध रोज़ देता जाएगा। जेठ के बाद बहुत दूध लेना पड़ेगा, महीना दो-महीने ज़च्चा दूध-घी ही के सहारे तो रहती है···

दूध देकर ग्वाला चला गया तो उगनी ने फाटक बन्द किया। भाभी अब भी बाथरूम के अन्दर थीं।

परांठे और मिर्च का अचार। यह तो होगा नाश्ता, खाना क्या-क्या बनेगा ? उगनी अपने मन से तय करेगी कि क्या-क्या बनेगा ? नहीं, भाभी जैसा बनाएंगी वैसा किया जाएगा।

आलू और बैंगन कल के पड़े हैं। आज शायद भाभी गोभी का फूल पसन्द करें। उगनी को सेम की फलियां याद आ रही थीं, हल्के हरे रंग की छोटी-छोटी फलियां सेम की। पिसी हुई सरसों और आम की सूखी फांकें डालकर। भारी बखेड़ा होगा लेकिन, सरसों कौन पीसेगा···?

भाभी नहा-धोकर निकल आईं।

बालों को माथे पर लपेटकर जटा-जूट बना लिया था, बड़ी अच्छी लग रही थीं। उगनी ने क्षण-भर उन्हें देखा, बोली—"भाभी, इस वक्त तुम्हारे गले में रुद्राक्ष की माला होती तो···"

"तो मैं गौरा पार्वती लगती न ?" भाभी हंसी।

"हां भाभी, मैं भी यही सोच रही थी !"

भाभी कपड़े पहन आईं, पीढ़ा खींचकर बोलीं—"भूख लग आई मुझे तो !"

"तो लो न ! कब से बुला रही हूं···"

"रात लम्बी होती है सवेरे-सवेरे पेट कुलबुलाने लगता है।"

"मेरा पेट कहां कुलबुलाता है सवेरे-सवेरे ?"

"हूं..."

भाभी मुसकराईं। उगनी समझ गई। उसका पेट किसी और वजह से कुलबुलाएगा...

पहला परांठा खत्म करके भाभी ने पानी पिया।

"अभी दो और।"

"बस ?"

"मगर तुम कामेश्वर को आने दो !"

"अच्छा भाभी ! क्या-क्या बनेगा अभी ?"

"गोभी का फूल आएगा, आलू है ही। भात-दाल सिझा लेना। रोटी अभी नहीं, रात को पकाना।"

"मिले तो आंवले मंगवा लेना भाभी !"

"चटनी के लिए न ! तुम्हें तो इन दिनों चटनी-फटनी चाहिए ही...!"

अन्त में चाय का दौर चला। उसमें उगनी भी शरीक हुई।

भाभी 'आज' लेकर बैठी ही थीं कि कामेश्वर आ गया। झोले में सामान था। उगनी को झोला थमाकर वह भाभी के सामने आ बैठा।

"पहले नहा लो !" भाभी बोलीं।

"बाद में नहा लूंगा।"

"नहीं, नहा ही लो बाबू !"

"लो, अभी नहा आता हूं !"

भाभी ने दोनों को आमने-सामने बैठा दिया। नीचे फर्श पर काला कम्बल बिछा था। दोनों एक-दूसरे की ओर रुख किए बैठे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि भाभी यह कर क्या रही हैं !

इधर-उधर आठ-दस अगरबत्तियां सुलग उठीं। कमरे के अन्दर चंदन का सौरभ फैलने लगा। जाड़े की खुशगवार धूप तिरछे पड़ रही थी और बन्द होने पर भी रोशनदान के शीशे अन्दर प्रकाश की परछाइयां बरसा

रहे थे, साथ-साथ सुखद गर्मी भी आ रही थी।

ऊपर फ्रेमों में मढ़े तीन-चार फोटो टंगे थे। सभी के सभी भाभी की बहन और बहनोई के पारिवारिक चेहरे थे, इनमें से किसीको उगनी ने देखा नहीं था। दो खूबसूरत कैलेंडर भी निगाहों को अपनी तरफ खींच रहे थे।

कामेश्वर ने हंसकर पूछा—"कौन-सी कसरत करवा रही हो भाभी ? वता भी तो दो !"

उगनी गंभीर हो रही थी। उसने भी भाभी की ओर देखा।

सिंदूर-भरी कटोरी सामने रखकर भाभी बोलीं—"आज यह विधि पूरी होगी। मैं पुरोहित हूं। लो, चुटकी में सिंदूर लो और उग्रतारा की सीथ भर दो वाबू ! उठो..."

कामेश्वर ने चुपचाप भाभी की आज्ञा का पालन किया।

उगनी की आंखों में इतने अधिक आंसू छलक आए थे कि वेचारी की कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

दोनों ने उठकर भाभी को वारी-वारी से प्रणाम किया, अच्छी तरह पैर छूकर। भाभी ने आशीष दी—"दीर्घायुर्भव ! सौभाग्यवती भव !!" दाहिना हाथ उगनी और कामेश्वर की पीठ पर फिरता रहा।

जाने कहां से भाभी दो अंगूठियां निकाल लाईं, वोलीं—"एक-दूसरे को पहना दो !"

फिर मिसरी का एक-एक टुकड़ा थमा दिया।

"इसका क्या होगा ?" कामेश्वर ने पूछा।

भाभी ने कहा—"उसके मुंह में डाल दो !"

"वाह !" कामेश्वर विनोद में बोल गया—"यह कैसे होगा ? वह तो मिठाई का अपना हिस्सा चांपे हुए है और मैं यह भी उसे दे दूं ? अच्छा इन्साफ है आपका, शावास मेरी भाभी !"

कामेश्वर की यह शरारत भाभी को अच्छी लगी। खिलखिलाकर

हंसती रहीं। बोलीं—"अच्छा, हुआ ! लो, अब एक-दूसरे के मुंह के अन्दर मिसरी डाल दो। जल्दी करो···तुम्हे भूख भी तो लगी है ! उगनी तो खैर लड़की ठहरी, ज़ुबान नहीं खोलेगी।"

उगनी सचमुच चुप रही।

उन्होंने एक-दूसरे के मुंह में मिसरी का टुकड़ा डाल दिया।

"अब जाओ, तुम लोग नाश्ता कर लो !" भाभी ने कहा—"आसन-वासन मैं उठा लेती हूं।"

'ऐसी भी क्या हड़बड़ी थी कि तुम्हें शाम की ट्रेन से जाना ही था ! ···

भाभी के बारे में सोचने से अपने को किस तरह रोके बेचारी उगनी ? आज ऐसी घटना घटी थी, जिसकी कल्पना का आभास तक उगनी को नहीं था ! आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमन्त में सिन्दूर भरा था ! धोखे में ? नहीं, जान-बूझकर। उसके होशो-हवास दुरुस्त थे, विवेक सजग था, आवेग या आवेश चेतना पर हावी नहीं था। सभी बातें उसे मालूम थीं।

हां, सभी बातें मालूम थीं कामेश्वर को, फिर भी उसने उगनी की मांग में सिंदूर भरा है !

कामेश्वर ग्यारह बजे तक जागता रहा। बातें करते-करते पलकें झिपने लगीं। उगनी ने कहा—"अब तुम सो ही जाओ ! सारा दिन भटकते रहे हो···"

उसकी एक हथेली को अपने सीने से लगाकर कामेश्वर ने आधी मुंदी आंखों से उसे देखा और आहिस्ता से कहा—"हां, नींद आ रही है। तड़के आंखें खुल जाएंगी तो तुम्हें जगा दूंगा।"

"शायद मैं तुम्हें जगा दूं !" उगनी ने कहा और मुसकराई। उसका माथा अपने तकिए पर आ गया और कामेश्वर को अगले ही क्षण नींद आ गई।

नेपाली पहरेदार राउंड पर है। यह शायद दूसरी राउंड है। रात को कालोनी की हिफाज़त के लिए यह व्यवस्था की गई होगी। एक ही नहीं, कई नेपाली होंगे। उगनी का जी करता है कि पहरुआ ठीक उस जंगले के सामने से गुज़रे। लेकिन वह इस ओर कहां आ रहा है! नहीं, आ रहा है।

स्क्वायर के बीचोंबीच छोटी सड़कें एक-दूसरी को काटती आगे निकल गई हैं। दूसरे स्क्वायरों का भी यही ढांचा है। ईंट और कंक्रीट और सीमेण्ट और लोहे की छड़ों के सहारे तैयार हज़ारों इकतल्ले क्वार्टरों की यह नई आबादी गांव नहीं है तो शहर भी नहीं हैं। उगनी के लिए यहां का सब कुछ नया है, पुरानी एक भी वस्तु यहां नहीं है। यहां की निर्जनता भी नई है, सन्नाटा भी नया है। झींगुरों की झंकार में गाढ़ापन भरनेवाला वह अन्धकार कहां गया है? अन्धकार में इंगित भरनेवाला वह जुगनू कहां गया?

आहिस्ता कुर्सी उठा लाई और जंगले के सामने बैठ गई। उगनी को अभी काफी देर तक नींद नहीं आएगी। वह चाहेगी कि बचपन से लेकर हाल तक बहुत-कुछ सोच जाए अपने बारे में। शायद ही सोच पाएगी।

आज पिछली स्मृतियां उस तरह उगनी के मन में नहीं आ रही हैं, छिटपुट धब्बों की तरह उभरती हैं और अगले ही क्षण मिट जाती हैं। आगे की सुखद कल्पनाओं के रंगीन गुब्बारे ध्यान में उभरते हैं, उभरते ही चले जाते हैं···नवजात शिशु के मुलायम हाथों की गुलाबी मुट्ठियां बहुत-सारे सूतों को मज़बूती से थामे हुए हैं, उन्हींके सहारे गुब्बारे हवा में फहरा रहे हैं···

जी कर रहा है, कालोनी में थोड़ी देर के लिए अंधेरा छा जाए और जेल का घंटा बजे—एक, दो···

(हां, एक···दो···तीन···चार···

(सिपाहीजी, आप उस रात चार बजे लौटे होंगे तो क्वार्टर के दर-

वाज़े के सामने फर्श पर लाठी बजी होगी 'ठन्न' से !

(दरवाज़ा नहीं खुला होगा···

(फिर बजी होगी लाठी···

(फिर आपने हुंकार भरी होगी, गले को साफ किया होगा···

(और अन्त में झुंझलाकर अपने सांकल को टटोला होगा ! नहीं सिपाहीजी ?

(अलीगढ़वाला वह ताला आपकी अपनी पसन्द का है, दस साल पुराना है। आपने तो नहीं, तिवारी की बीवी ने मुझे बतलाया था। दो चाबियां थीं। उस रोज़ शाम को आपके ओवरकोट की पाकिट में एक चाबी मैंने डाल दी थी।

(परेशानी नही हुई न ? ताला नहीं न तोड़ना पड़ा ?

(देखिए सिपाहीजी, आपकी कोई चीज मैं नहीं लाई हूं···

(मोरछाप नीले किनारोंवाली वह गुलाबी साड़ी अब आप क्या करेंगे ?

(अगले सबेरे तिवारी को चाय नहीं मिली होगी और गीता बहुत रोई होगी !

(गीता मेरी, तू बहुत रोई न ?

[हां, चाची ! ···नहीं चाची, मैं तुमसे नहीं बोलूंगी ! कितनी निठुर हो तुम···

(हां गीता, मैं बड़ी निठुर हूं ! बड़ी बेरहम ! मैं तुझे अभी और रुला-ऊंगी गितिया !

[जी नहीं भरा है ?

(जी भरेगा मेरा ? आंसुओं से ? इतनी जल्दी ? ···अच्छा भाई, गीता एक बात पूछूं ?

[पूछो न चाची ! ज़रूर पूछ लो···मैं सब कुछ बतला दूंगी। मैंने कभी तुमसे कुछ छिपाया नहीं चाची !

(तेरी मां इन दिनों तुझसे इतना लड़ती क्यों है ? शादी के बाद उसका रवैया बदला है शायद !

[मैं क्या जानूं !

(हुं···बाप तो बेटी की इतनी तारीफ करे और मां इस तरह बेटी से लड़ती रहे ! मइया री !

[चाची, तुम क्या जानो पिता का प्यार !

(मगर मेरी मां तो मुझसे कभी लड़ी नहीं···

[क्या कहा ? मां ? तुम्हारी मां जीती है ?

(हूं, जीती है ! ज़रूर जीती है ! मैंने कब तुझसे कहा कि नहीं जीती है ?

[हां, कहा था !

(मुझे बहुत झूठ बोलना पड़ा···

[अब आगे झूठ नहीं बोलोगी ?

(अब क्यों झूठ का दामन पकड़ूंगी ? ···

किचन के बर्तन गिरने की आवाज़ आई तो उगनी का ध्यान टूटा।

ज़रूर बिल्ली अन्दर गई होगी। मछली का सालन बना था। चितकबरी दीवार पर से शाम को भी कूदी थी। बिल्ली की वह छलांग उगनी को अच्छी लगी थी। किचन में किवाड़ खुली रह गई थी क्या ? हां, यही हुआ होगा। भाभी शाम की ट्रेन पकड़ने के लिए कामेश्वर के साथ स्टेशन रवाना हुई तो उगनी क्वार्टर के बाहर रिक्शे तक गई। रिक्शा चला तो अन्दर चली आई। खिड़की से देखती रही।

बरामदे का स्विच ऑन हुआ।

बिल्ली भाग चुकी थी। उसे और तो कुछ मिल नहीं सका, कांटों पर ही खेल गई होगी। हां, रेहू का आधा कंकाल अवश्य था जिसे भाभी ने चूस-चबाकर छोड़ दिया था। इससे चितकबरी का काम चला होगा।

उगनी ने किचन की किवाड़ी अच्छी तरह लगा दी।

पीतल की बाल्टी में पीने का पानी भरा था, बरामदे के कोने में। आधा गिलास पानी पिया। अन्दर पहले कमरे में पलंग के नज़दीक गई। बरामदे की बिजली का आलोक तो नहीं, उसका दबदबा अवश्य था अन्दर भी। उगनी ने झांककर कामेश्वर के चेहरे को देख लिया, सांसों की रफ्तार सहज थी और नथने मशीनी हरकत में फूल-सिकुड़ रहे थे।

उसने बार-बार कामेश्वर को देखा।

ऊनी कम्बल कमर तक थी। वह कुर्ता पहने ही सो गया था। जाकिट ज़रूर उतारकर खूंटी में टांग दी थी।

उगनी उसके चेहरे की ओर देखती रही।

देखती रही, सोचती रही।

सोचती रही देखती रही···

आज वह नये सिरे से सुहागिन बनी थी। उसकी मांग में आज नये सिरे से सिन्दूर भरा गया था। अपनी पसन्द का युवक ही उसका पति बना था आज। कल तक कामेश्वर उगनी का प्राणवल्लभ था, आज वह उसका सब कुछ था। अन्दर पल रहे चार महीने के भ्रूण को उसकी निश्चल आशीष मिल गई थी···

मठिया की बगीची में बातें करते-करते दूसरी बार भी उगनी रो पड़ी थी। रोती रही थी। आंसू रुक ही नहीं रहे थे···

(तुम इन आंसुओं को पोंछते-पोंछते थक गए थे न ?

[कहां ! मैं कहां थका था ! तुम बड़ी मुश्किल से चुप हुईं !

(कितनी बड़ी बात कही थी तुमने ! कितना बड़ा दिलासा दिया था !

(अब यों घुल-घुलकर मुसकराओ नहीं ! उस रोज़ पछतावे की भट्ठी मेरे अन्दर कैसे धू-धू करके जल रही थी और कैसे तुमने उसे ठंडा कर दिया था ! ···तुमने कहा था, गर्भ रह गया है ? कोई बात नहीं ऊगो ! मुझे तुम्हारा यह भ्रूण भी स्वीकार है। मेरे लिए इतना ही काफी होगा

कि तुम उस शिशु की मां रहोगी···कितनी बड़ी बात कही थी तुमने ? कितना बड़ा आश्वासन दिया था !

(मेरे आंसू लेकिन और भी ज़ोर पकड़ गए थे !

(इससे पहले शायद ही नारी को पुरुष ने भरोसे के ऐसे अनमोल वचन दिए होंगे। इससे पहले मैं कभी सोच भी नहीं पाई कि पुरुष इतना उदार भी हो सकता है।

(तभी तो पश्चात्ताप का वह पत्थर वहीं का वहीं पिघल गया था और आंखों के रास्ते जल्दी-जल्दी निकलने लगा था···

(कामेश्वर, मैं तुम्हारी रिहाई के महीने गिन रही थी। मेरी समझ के अनुसार तुम मास के अन्त तक छूटकर आने वाले थे। तीन महीने माघ के बाद मैं भी तुम्हारा इंतज़ार करती। फागुन, चैत, बैसाख। बैसाख बीतने पर आते तो अपनी उगनी को नहीं पाते। आठ-नौ महीने का बच्चा पेट के अन्दर मौजूद हो तब भी आत्महत्या की जा सकती है कामेश्वर ! नहीं ?

(सिपाहीजी को मेरे मन ने कभी कबूल नहीं किया। भंग की बर्फी धोखे में खिला दी गई थी, कामेश्वर ! तुम्हें मालूम है, मढ़िया-सुन्दरपुर के राक्षसों ने भी इस देह पर अत्याचार किए थे।

(हमें गिरफ्तार किसने करवाया ?

(क्या तुम सचमुच मुसलमान थे ?

(क्या तुम सचमुच मुझे भगाए लिए जा रहे थे और पाकिस्तान पहुंचानेवाले थे ?

(क्या तुम मैमनसिंह के रहनेवाले कलीमुल्ला थे ?

घर से सत्तर मील दूर, दूसरे ज़िले की सबडिविज़न अदालत में पुलिसवालों ने हमपर किस तरह केस चलाया और एक ही पेशी में कैसे सारा खेल खत्म हो गया ! तुमने नर्मदेश्वर के नाम तार भिजवाया था न ? भाभी बतला रही थीं, तार तो पहुंचा ही नहीं !

(देहात में रहना हो तो गुंडा बनो कामेश्वर ! गुंडों से दोस्ती करो, उन्हें खिलाओ-पिलाओ ! तुम उनका काम करो, वे भी तुम्हारा काम करेंगे···

(अच्छा, यह तो बताओ ! मुझे तीन महीने की सज़ा हुई लेकिन जेल के अन्दर पैंतीस ही रोज़ रहना पड़ा, यह क्या बात हुई ? वक्त पर रिहा होती तो ज़रूर नर्मदेश्वर आकर मुझे साथ ले जाते ! बेचारे को पता ही नहीं चला कि जेल से छूटकर उगनी गई कहां ?

(वापस गांव क्यों नहीं गई ? वाह, गांव कैसे वापस पहुंचती। गीध मुझे बीच में ही नोचकर खा नहीं जाते ? कामेश्वर, मैं एक बात तुमसे साफ-साफ कह देती हूं : उगनी कभी मढ़िया-सुन्दरपुर नहीं जाएगी, उस गांव की सीमा के अन्दर अपना पैर नहीं रखेगी उगनी ! तुम इसके लिए मुझे कभी मजबूर मत करना, समझे ?

(मां ! मां के लिए अब क्या रखा है उस गांव में ? वह हमारे साथ रहेगी। हम उसकी सेवा करेंगे, वह हमारी सेवा करेगी। कितना अच्छा होगा !

[बहुत अच्छा होगा ऊगो ! ···

उगनी को लगा कि कामेश्वर करवट बदलनेवाले हैं आंखें तो अभी खुलनी नहीं चाहिए। गाढ़ी नींद में सोए हैं, सोते रहेंगे घंटों। नींद का गाढ़ापन कम होगा तो टोह लेंगे साथ सोनेवाली देह की। इसमें अभी देर है। कै बज गए ?

काठ के खोल में टाइमपीस रखी हुई थी। बहुत सारी किताबों के साथ अलमारी उसका भी भार संभाले हुए थी। उगनी ने धीरे से अलमारी खोली और टाइम देखा।

डेढ़ बज रहा था।

बरामदे का स्विच ऑफ करके वह फिर दूसरे कमरे में आई और जंगले के पास उसी कुर्सी पर बैठ गई।

नेपाली पहरेवाला सामने आया।

कमर के पास बेल्ट से खुखरी लटक रही थी। वह अपनी पहाड़ी धुन में कोई गीत गुनगुना रहा था।

क्वार्टर से चार गज़ दूर ही छोटा रास्ता गुज़रता था, उसपर मटमैले रंग की बजरी बिछी थी। किनारे-किनारे चारों ओर अड़तालीस क्वार्टर थे, बारह-बारह एक-एक ओर···

क्वार्टर के करीब आकर खिड़की की ओर नेपाली ने गौर किया। उगनी को देखकर बोला—"सलाम बीबीजी!।'

"नमस्ते"—उगनी ने कहा। फिर यों ही पूछ लिया—"कै बजा है बहादुर?"

बहादुर ने कलाई उठाकर टाइम देखा। बोला—"एक बजकर चालीस मिनट हुए हैं बीबीजी!"

क्षण-भर रुककर उसने पूछा—"आप लोग नये-नये आए हैं न? मिश्रा बाबू के रिश्तेदार होंगे?"

"हां, रिश्तेदार लगते हैं। तुम मिश्राजी को जानते हो?"

"वाह साहब, जानेंगे क्यों नहीं? जब से फैक्टरी चालू हुई तभी से मिश्रा बाबू यहां हैं···मैं भी तभी से हूं बीबीजी! ···आप लोग तो अभी रहिएगा न? मिश्रा बाबू छुट्टी लेकर गया है, बीस रोज़ बाद आएगा।"

"हां, हम रहेंगे अभी। उनके आने पर जाएंगे।"

"मिश्रा बाबू का लड़का मुझसे खूब खेलता है बीबीजी! उससे मेरी दोस्ती हो गई है···आपका बच्चा तो अभी सोया होगा···हम कल शाम को आएगा तो आपके बच्चे से दोस्ती करेगा···बच्चा है कि बच्ची बीबीजी?"

उगनी को नेपाली का यह सवाल अटपटा लगा। बोली—"किससे दोस्ती करोगे? यहां न बच्चा है, न बच्ची।···तुम्हारे बीवी-बच्चे कहां हैं? पहाड़ पर?"

"अभी शादी कहां हुई !"

इसपर उगनी ने कुछ नहीं कहा। बहादुर की परछाईं आगे बढ़ गई।

कातिक की पूर्णिमा के चार-पांच रोज़ बाद भभीखनसिंह को बुखार चढ़ा। पूरे सात रोज़ चढ़ा रहा। दवा-दारू मंगवाने में, जेल के हाकिमों तक खबर पहुंचाने में देवर-भाभी का यह रिश्ता उगनी के खूब काम आया था। हवलदार पांडे और रामजनम उपाधिया ने काफी दौड़-धूप की थी। सिपाहीजी ने उनकी सेवा से खुश होकर खुद ही कहा था उगनी से—"इनसे काहे का पर्दा ! ये तो तुम्हारे लिए देवर से भी बढ़के हैं···देवर तो गांव में बैठा है, कभी झांकता तक नहीं। भाई नहीं है, कसाई है मेरे लेखे···अब यही पांडे-उपाधिया भभीखन के भाई-भतीजा हैं···समझीं ?"

"समझी !" उगनी का ढका हुआ सिर हिला था।

और तभी से 'भाभी', 'भाभी' शुरू हुई थी। वे तो खैर बेहद लपकते थे, उगनी ने लेकिन अपनी मर्यादा क़ायम रखी। क्या मज़ाल कि उनके सामने कभी मुसकराई हो !

बहादुर दूसरे छोर पर पहुंच रहा था। फिर से उसने उगनी की निगाहों को अपनी तरफ खींच लिया : नेपाली ईमानदार भी होते हैं और मेहनती भी। सिपाहीजी बार-बार इनका ज़िक्र करते थे। कामेश्वर होटल का धन्धा करेंगे नर्मदेश्वर के साझे में। इधर आसपास नई बस्तियां आबाद हो रही हैं। छः-सात क़ारखाने तो चालू हो चुके हैं, अगले वर्षों में पांच-सात कारखाने अभी और चालू होंगे। छोटी लाइन और बड़ी लाइन वाली रेलगाड़ियों का भारी जंकशन ठहरा। यहां होटल का काम अच्छा चलेगा। चार नौकर रहेंगे, उनमें से दो तो नेपाली होंगे ही। मैं कामेश्वर से कहूंगी, नर्मदेश्वर से भी मनवा लूंगी। नहीं मानेंगे नर्मदेश्वर ? वाह, मानेंगे कैसे नहीं ! भाभी का जो हुक्म होगा मानना पड़ेगा···

भाभी की याद आते ही वह प्रफुल्लित हो उठी। इन तीन दिनों के अन्दर कितना कुछ जुटा दिया था भाभी ने ! साड़ियां, ब्लाउज़, तेल,

साबुन, पाउडर, क्रीम से लेकर क्राकरी, बर्तन-वासन और राशन तक ! लगता है, वे योंही नहीं गई हैं। ज़रूर, किसी जुगाड़ में गई हैं। नर्मदेश्वर उसी रोज़ शाम को चला गया था मढ़िया-सुन्दरपुर। सुना है, इस वार धान की फसल अच्छी आई है। दो मन पुराने चावल लाकर वह उसके हवाले कर देगा, आधा मन अरहर भी। पांच सेर घी भी। जमी हुई गृहस्थी है, नर्मदेश्वर इतना कर सकते हैं। भाभी ? भाभी को तो उसके लिए आगे भी वहुत कुछ करना है···

(भाभी, तुम्हारी छोटी बहिन कैसी है ?

[जैसी तुम हो उग्रतारा ?

(मैं ? उग्रतारा ? उहुं, मैं न तो उग्र ही हूं न तारा ही ! ज़बर्दस्ती वचपन में किसीने नाम रख दिया होगा, है न भाभी ?

[नाम की चीर-फाड़ नहीं करते मेरी रानी !

(हां, यहां तो देह की ही चीर-फाड़ करते हैं···

[मन की नहीं ?

(मन का हाल तुम जानो भाभी ! मैं तो यह भी नहीं वतला सकती कि अभी-अभी शाम की ट्रेन से तुम कहां गई हो ! कहां गई हो भाभी ? गांव गई हो ? मेरी मां को लिवा लाने ? मां को ले ही आओ ? वह अपनी उगनी के लिए कितना रोती होगी ! हां ? मां को साथ लेकर लौट रही हो ?

(मां, अब तुम वापस मत जाना !

[नहीं, अब कहां जाऊंगी ?

(रोते-रोते तुम्हारी आंखें लाल हो गई हैं, पपोटे सूज गए हैं मां !

(नहीं, नहीं, अब न रोओ मां !

(हाय, तुम्हारे आंसू तो थमते ही नहीं···हाय, अब मैं क्या करूं ?

[पगली, यह तो एक बीमारी है, आंखें हमेशा गीली रहती हैं, अक्सर पानी बहता रहता है इनसे···

(नहीं मां, यह पानी नहीं है। आंसू हैं ये तो ! मैं दूध-पीती बच्ची कहां हूं, मुझे बहलाओ नहीं मां ! पानी होता तो इतनी जल्दी सूख कैसे जाता ? ···तुम्हारी उम्र क्यों आठ-दस महीनों में ही बीस वर्ष बढ़ गई है ? सूखी चमड़ी का यह फीकापन इन आंखों से नहीं देखा जाता मां ! ··· तुम्हें अपना वह दामाद याद आता है कभी ?

[तुझे आता है याद ?

(बिलकुल ! अच्छी तरह ! नाक पतली और खड़ी थी न ? बेहद शर्मीले थे। मैं पन्द्रह की, वह बीस के···कहने-भर को यह उनकी शादी थी, पहली बीवी की मौत शादी के चार महीने बाद ही हो गई थी। टाइ-फाइड उठा ले गया था बेचारी को। फिर ऐसी अफवाह फैली कि उस नौजवान का ग्रह खराब है, जो भी लड़की उसका हाथ पकड़ेगी, जिएगी नहीं। छः महीने के अन्दर मर जाएगी।···कोई उसे अपना दामाद बनाने के लिए तैयार नहीं था। तभी तो इतनी आसानी से वह तुम्हें मिला था। कुल मिलाकर डेढ़-दो सौ खर्च आया था···कितना खर्च पड़ा था मां ? फिर ! फिर रो पड़ी ! यह क्या हो गया है तुम्हें ? अब तो हम नदी पार करके इधर आ गए हैं मां !

[मैं तुझे भर-पेट कभी खिला तक न पाई···

(तो अब उन दिनों की याद करके आंसू क्यों बहाती हो ? ···भाभी, यह नहीं मानती है। तुम्हीं इसे समझाओ न ? मैं जाती हूं, तुम मेरी मां से अकेले में बातें करो···

[और तुम किधर चलीं उग्रतारा ?

(नींद आ रही है भाभी !

[ओह तुम भी कभी सोती हो ! मैं तो समझती थी—'सदा भवानी जागती···'

(नहीं भाभी, अब और अधिक छेड़छाड़ न करो···

उगनी ने हल्की-सी जम्हाइयां लीं और कुर्सी से अपने को अलग कर

लिया। इस अलगाव को खड़ा होना कहेंगे ?

कुर्सी की बांहों से बांहें अड़ाकर उसने अपने सीने को सीधा किया, दंड-बैठक की मुद्रा में। देर से बैठे-बैठे कमर अकड़ गई थी। अब वह जाकर लेट जाएगी। अब नींद आएगी।

तीन बजे थे।

···थोड़ी देर में चार बजेंगे। चार बजेंगे तो सांकल खड़केगी और बाहर सीमेंटवाली फर्श पर लाठी बजेगी ठन्न से। भभीखनसिंह अन्दर आएंगे। और—

और, जहन्नुम में जाएंगे भभीखनसिंह !···

उगनी ने अपने मन को डांट-फटकार कर सीधा किया। अब तो वह ज़रूर सो जाएगी। अब नींद को उसकी पलकों पर उतरने से कौन रोकेगा ?

कम्बल के अन्दर आधा बदन लेकर उगनी सीधी हो गई। हाथ और पांव ढीले कर लिए। सांसों की गति को अनियन्त्रित छोड़ दिया।

आ गई नींद उगनी को ?

हां, अभी आई···आ ही गई !

न, कहां आई ! ज़रा अलग हट गई है···

पलकें पहले ही खुल चुकी थीं। मुश्किल से दो-चार मिनटों के लिए बन्द रही होंगी। खिड़कियों के बड़े शीशे बाहरी प्रकाश को छानकर अन्दर पहुंचा रहे थे। उनका बन्द रहना ठंड को तो रोके हुए था, पर पार-भेदी आलोक की भास्वर छाया पर उसका कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

उगनी थोड़ी देर तक कामेश्वर के चेहरे की तरफ देखती रही। खड़ी नाक, भौंहें, बड़े-बड़े बाल साफ दीख रहे थे। छंटी हुई महीन मूंछों की काली लकीरें साफ दीख रही थीं। होंठ, ठुड्डी, दोनों कान···सब दीख रहा था। गालों का सपाटपन ही शायद उन्हें अच्छी तरह दीखने नहीं दे रहा था···

पलंग, खुली अलमारी, कपड़े टांगने के लिए खूंटियों की पतली पट्टी दीवाल में, छत से लटका हुआ पंखा और बल्व…बस, यही कुछ था कमरे के अन्दर। पलंग के नीचे दो ट्रंक थे, वे अभी दिखाई नहीं दे रहे थे।

अलार्मवाली घड़ी जागने में उगनी का साथ दे रही थी। टिक्-टिक् टिक्-टिक्-टिक्-टिक्-टिक्…उछलती हुई सैकण्डवाली सूई उसके मन-प्राण को पुलकनों से भरती जा रही थी। कालचक्र की मुखर गति आज उसे बड़ी प्यारी लग रही थी। कामेश्वर की कलाई में घड़ी बंधी होती तो ज़रूर उगनी अपने कान को उससे लगा देती, देर तक भिड़ाए रखती अपना कान कलाईवाली घड़ी से…टिक्-टिक्-टिक्-टिक्-टिक्…छोटी घड़ियों की टिक्-टिक् कितनी बारीक, कितनी पैनी लगती है कानों को!

गीता की छोटी बहिन उमा थी न? वह एक बार अपने जीजा की कलाई-घड़ी उठा लाई और उगनी के कान से उसे सटा दिया। आंखें नचा-कर बोली—"कितना अच्छा लगता है कानों को! नहीं चाची?… बोलो चाची, कैसा लगता है कानों को?"

उगनी ने आंखों के इशारे से बतलाया था, बहुत अच्छा लगता है। नौ साल की उमा के बाल-मन को वह मूक अनुमोदन बिलकुल हल्का जंचा था। उगनी की बांह को दूसरे हाथ से झकझोरती हुई, खीझ-भरे स्वर में उमा ने पूछा—"साफ-साफ कहो न, कैसा लगता है। इस तरह की महीन आवाज़ तुमने कभी सुनी है? सच बतलाना चाची?"

चाची को सच-सच बतलाना पड़ा। कई बार बतलाना पड़ा…उमा भला यों छोड़ती?

अभी उगनी ने यों ही कामेश्वर की बाईं कलाई आहिस्ता से उठा ली है, अपना दाहिना कान उस सूनी कलाई से लगा लिया है! हां, वह बारीक आवाज़ सुनना चाहती है! महीन टिक्-टिक्…छोटी घड़ी की सबसे छोटी सूई के सूक्ष्म स्पन्दन कान के जरिये अपनी चेतना के अन्दर भर लेना चाहती है।

पांच घण्टे की गाढ़ी नींद के बाद, लगता है, अब कामेश्वर की नींद पतली हो आई है···अच्छा हो, थोड़ी देर अभी और सोते रहें कामेश्वर। अभी से उठकर क्या करेंगे, कितनी देर गपशप करेंगे ?

कलाई कान से अलग कर दी गई।

बहादुर के बूटों की आहट सुनाई पड़ रही है···खिड़की के सामने पहुंचकर क्षण-भर के लिए वह रुका है, लोहे की छड़ को अपने डंडे से छू दिया है उसने, हल्की आवाज़ उठी है ठन् !

उगनी मन ही मन दुहराती है—ठन् !

बहादुर आगे बढ़ गया है, आहट दूर होती जाएगी।

उगनी बार-बार मन में दुहरा रही है—ठन् ! ठन् ! ठन् ! ठन् !

हां, अब बजे होंगे चार···

सिपाहीजी चाबियों का झब्बा अगले वार्ड को थमाकर जेल-गेट से बाहर आ जाएंगे। अपने क्वार्टर की तरफ रुख करके ज़रा देर के लिए खड़े रहेंगे। फिर बड़ी मुश्किल से अपने को आगे की ओर धकेल लाएंगे।

टटोलकर अलीगढ़वाले पुराने ताले की सूराख में चाबी डालेंगे। फाटक खुलेगा। अन्दर आकर बरामदे का स्विच ऑन करेंगे सिपाहीजी··· इधर-उधर देखेंगे, भीतरवाला कमरा खोलने का जी नहीं होगा।

(आपका मैंने भारी नुकसान किया है, नहीं सिपाहीजी ?

(यह चौथी रात है !

(लगता है, बिना खाए ही ड्यूटी पर चले गए थे ! बड़ी भूख लगी होगी ?

(बुढ़उती में सत्तू नहीं खाइएगा सिपाहीजी, मैं हाथ जोड़ती हूं ! इधर देखिए, मेरी ओर। सुनिए क्या कहती हूं ! खाना ज़रूर पका लिया कीजिए।

(मैं भाग आई हूं ! आपको कितना बड़ा धोखा दिया है मैंने ! जानती हूं, आपकी आंखें गीली नहीं हुई होंगी। लेकिन अन्दर ही अन्दर

कलेजी सूख गई है आपकी, मैं साफ देख रही हूं सिपाहीजी !

(मइया री ! इतना भारी घाव ! आपके सीने का घाव कैसे भरेगा सिपाहीजी ?

[हत्यारिन कहीं की ! ···कैसे भागी है चोर की तरह ! ···

[सादगी और सिधाई के भी नखरे होते हैं न ?

[चुड़ैल ! अपनी कोख का बच्चा आप ही खानेवाली !

[किच्चिन ! कच्चा मांस चबाने के लिए भागी है ?

[डायन ! एक इन्सान का लहू पीकर गायब हो गई ! ···

(चुप क्यों हो गए सिपाहीजी ? अभी और गालियां दीजिए ! मैं सब सुनती जाऊंगी, ठंडे मन से सुनूंगी। आपके विश्वास को किस बेरहमी से मैंने चूर-चूर कर दिया है ! यह मेरी मजबूरी थी सिपाहीजी, शौक नहीं था ! अब आप जितनी भी गालियां देंगे, सुनती जाऊंगी। जो भी श्राप देंगे, झेलूंगी सिपाहीजी ! एक भोले-भाले अधेड़ खेतिहर ने खाकी लिबास पहन रखी है, भभीखनसिंह डरावना नाम ज़रूर है मगर पकी मूंछोंवाले उस भारी खोल के अन्दर मुझे तो हमेशा अपने चाचाजी ही दिखाई पड़ते रहेंगे। सच सिपाहीजी, आपको सामने पाकर मैं और कुछ सोच ही नहीं पाती थी ! मेरे पिताजी किसान ही थे। आज जिन्दा होते तो पैंतालीस की उम्र होती···

(अच्छा, एक बात पूछ लूं सिपाहीजी ?

(आप रिटायर कब होंगे ?

(रिटायर होने के बाद कहां रहेंगे आप ?

(क्या मैं आपकी सेवा का अवसर फिर कभी पाऊंगी सिपाहीजी ?

(कामेश्वर ? कामेश्वर कभी मुझे मना नहीं करेंगे सिपाहीजी ! उनका दिल बहुत बड़ा है सिपाहीजी !

(आपकी सन्तान आपको वापस मिल सकती है। यहां किसीको नहीं अखरेगा। न भाभी को, न नर्मदेश्वर को, न इन्हींको। आपका बच्चा

आपको वापस मिल जाएगा सिपाहीजी ! देख लीजिएगा···

अब उगनी से रहा नहीं गया।

वह पलंग से उठ गई, कमरे से बाहर बरामदे में आई। चहलक़दमी करने लगी।

उसका जी हल्का था। कितना अच्छा समाधान उसके चिन्तन को मिला था ! बेचैन मन को और चाहिए भी क्या ? राहत मिल जाए तो दिल की धड़कनें अपनी सहज रफ्तार वापस नहीं पाएंगी ?

रात्रि-शेष का शिशिर-समीर दूसरे कमरे की खुली खिड़कियों से होकर अन्दर आने लगा तो उगनी के रोएं कंटकित हो उठे। वह शाल याद आई जो भाभी उसके लिए परसों ही ले आई थीं। परसों शाम को घंटे-भर के लिए उसे उगनी ने ओढ़ा भी तो था।

दूसरे कमरे के अन्दर तख्तपोश पर ढेर सारे कपड़े और दूसरे सामान भी रखे थे। भाभी खुद ही सहेजकर रख गई थीं।

उगनी ने शाल निकाल ली।

पश्मीने की मुलायम शाल सिलेटी रंग की थी, उगनी की चम्पई सूरत पर खूब खिलती थी। भाभी ने मुसकराकर कहा था—"कामेश्वर को गुलाबी रंग पसन्द है। अगले वर्ष वह अपनी रुचि का ला ही देगा, अभी इसीसे काम चलाओ।"

उगनी संजीदगी में डूबकर बोली थी—"नहीं भाभी, जाड़ों में सुबह-शाम मैं यही ओढ़ा करूंगी। पुरानी हो जाएगी तो भी···"

"यह भी तो एक तरह का मोह होगा न ?" भाभी खिलखिलाकर हंसती रहीं।

शाल ओढ़ते समय, इस क्षण भी वह मोहिनी खिलखिलाहट उगनी के कानों को गुदगुदाती-सी लगी।

स्विच ऑन करके उसने अपने को भली भांति देख लिया।

इतनी बढ़िया शाल जीवन में उसने पहली बार अपने कन्धों पर

डाली थी···

मामूली खेतिहर की बेटी···जैसी-तैसी रज़ाई के साथ जाड़े कटे थे अब तक। पिछले कातिक में जब भभीखनसिंह ने उसकी पसंद के लिए लिहाफ के चार-पांच गिलाफ गीता की मार्फत अन्दर भिजवाए तो उगनी ने उस छोकरी से कहा—"तुम्हारे चाचा को जो जंच जाए, इनमें से वही वापस लेते आना।" सिपाहीजी ने बैंगनी किनारियोंवाला पीला गिलाफ ले लिया था। उस रज़ाई को देख-देखकर गीता बेहद चिढ़ती थी। कहा करती थी—"चाची, तुम पक्की देहातिन हो ! नहीं चाची, तुम देहातिन भी नहीं हो। देहात की औरतें तो अब ऐसा चटकीला माल छांट के लेती हैं, ऐसा चटकीला, ऐसा चटकीला···"

—तो इस शाल का रंग चटकीला है ? नहीं, सिलेटी रंग को चटक-दार भला कौन कहेगा !

—गीता को यह रंग फीका लगता···

—भाभी को लेकिन कोई भी देहातिन कहने की जुर्रत नहीं करेगा···

उगनी पश्मीने की कोमलता को बार-बार गालों से रगड़कर परखती रही। समझ नहीं पा रही थी कि यह पश्मीना आखिर होता क्या है। भाभी से पूछकर मालूम कर लेगी। उनको ज़रूर मालूम होगा।

पीले और नीले धागों में न जाने कौन-से फूल कढ़े हुए हैं लाल किनारियों पर ! ···वह क्या-क्या पूछेगी भाभी से ? नहीं, किनारी के इन फूलों के बारे में उगनी भाभी से नहीं पूछेगी; भाभी की छोटी बहिन इन्दिरा से मालूम करेगी।

भाभी ने बतला दिया है—"तुम्हारी उमर और इन्दिरा की उमर लगभग एक होगी। तुम फागुन में बाईस पूरे करोगी, वह बैसाख में।"

ले-देकर इन्दिरा ही तो यहां अपनी सहेली हुई। ये तो अपना धन्धा जमाने में अभी महीनों मशगूल रहेंगे। मैं बीच-बीच में आकर इन्दिरा से मिल जाया करूंगी। कभी-कभार भाभी भी तो देहात से आ धमकेंगी।

नहीं आएंगी। ज़रूर आएंगी। भाभी को अपनी सगी बहिन के लिए उतनी फ़िक्र नहीं रहेगी, जितनी फ़िक्र अपनी चेली के लिए···

(भाभी, अखाड़ में पूरा महीना तुम यहीं आके रहना! मां तो खैर रहेगी ही···

(तुम्हीं तो उस रोज़ कामेश्वर से कह रही थीं, यहां से ढाई-तीन मील दूर औरतों के लिए अच्छा अस्पताल बन गया है अब···

(मैं दस रोज़ पहले ही अस्पताल में भर्ती हो जाऊंगी भाभी! ···

(वाह, अभी से तू हमारी बातें सुन रहा है? ···कौन है अन्दर? लड़का है कि लड़की! ···

(अभी से इतना हिलने-डोलने लगा है?

(नहीं, मुन्ने! नहीं, बिलकुल ही नहीं! अभी से हमारी बातों में तू अपनी टांग मत अड़ा भाई!

(क्या कहा? नहीं मानेगा? मां की आंतों से खिलवाड़ करेगा? ऊधम मचाएगा कलेजे से लटककर?

(देख, बड़ी पिटाई पड़ेगी!

(अरे भाई, अन्दर कोई दीवार नहीं है! क्यों नाहक अपना सर टकरा रहा है?

(शैतान कहीं का। इतने ज़ोरों से कान खींचूंगी, इतने ज़ोरों से··· इतने ज़ोरों से···

[कि···कि···कि!! खबरदार, हटा ले अपना हाथ! हटा ले! हटा, अभी हटा···हटाती है हाथ कि नहीं?

[मेरे बच्चे को पीटेगी तू?

[कौन होती है तू भभीखनसिंह की सन्तान पर हाथ उठानेवाली? खबरदार! चमड़ी उधेड़ लूंगा, हां!

···बड़ी-बड़ी सफेद मूंछें निषेध की तीखी मुद्रा में फड़क उठी हैं। उगनी सहमकर कुर्सी पर बैठ गई है, जी नहीं करता कि जंगले की तरफ

नज़र उठाकर सामने देखे।

दिल की धड़कन बढ़ गई है।

इतना वह अवश्य करेगी कि उठकर स्विच ऑफ कर आएगी, फिर निढाल होकर कुर्सी के हवाले कर देगी अपनी देह को।

पकी मूंछों का आतंक कब तक यों पीछा करेगा उगनी का ?

उसने पलकों को मूंद लिया है। दहशत के मारे उसकी चेतना सिमट-सिकुड़कर अन्दर डूब-सी गई है। एक-एक अंग सुन्न पड़ जाएगा क्या ?

बारी-बारी से कलाइयों में नाखून गड़ाकर उगनी ने अपने होश का अन्दाज़ लिया। लगा कि रात-भर की थकान अब एकाएक दिल और दिमाग पर हावी हो आई है। लगा कि अगले ही क्षण सिर में भारी दर्द उठेगा। लगा कि रग-रग सूखी लताओं की तरह कुरमुरा उठेगी। लगा कि लाख ज़ोर मारेगी तो भी उठा नहीं जाएगा।

तन और मन दोनों पर अवसाद हावी हो गए थे। थकान की अति ने तन्द्रा को बुला लिया था।

मुंदी पलकों पर ऊंघ का छिड़काव होने लगा।

चौथाई नींद की हल्की मात्रा का उतना-सा प्रसाद भी अभी काफी रहेगा बेचारी के लिए। ऐसे में खंडित सपनों के हमले तो होंगे ही···

(सिपाहीजी आप बीच में क्यों पड़ते हैं ?

(मैं उसकी मां हूं। पीटूंगी चाहे कान खींचूंगी, आप कौन होते हैं मना करनेवाले ?

[मैं ? मैं छोकरे का बाप हूं ! मेरा कोई हक नहीं है उसपर ?

(जी, आपका इस छोकरे पर कोई हक नहीं रहा ! आपका हक छोकरे की मां के शरीर पर था जिससे भंग की बर्फी खिलाकर अपनी हविश पूरी की थी···सुनिए, सिपाहीजी ! घबराइए नहीं, पिता का पद आपसे कोई नहीं छीनेगा···पाल-पोसकर छोकरे को हम आपके हवाले कर देंगे सिपाहीजी !

(सिपाहीजी आप क्या करेंगे बच्चा लेकर ?

(उसे भी अपनी तरह हवलदार-जमादार बनने की तालीम दीजिएगा?

(हुं ! मिलीटरी आफिसर बनेगा यह ?

(हुं ! तीन-तीन फीतोंवाला बैज लगाएगा ?

(फिर तो ठीक है, सिपाहीजी ! मानती हूं आपका हक !

(फिर तो यह आपकी तरह डरावनी मूंछें नहीं रखेगा !

(आप हंसते क्यों हैं सिपाहीजी ?

(खैर, अब आपके छोकरे पर पिटाई नहीं पड़ेगी···लेकिन है बड़ा शैतान ! आपने भी अपनी मां को इसी तरह परेशान किया होगा···

(वाह, आप तो इस तरह खुलकर हंस रहे हैं कि···

(वाह, खुशी के मारे आपकी पकी मूंछें इस तरह थिरक रही हैं कि···

(वाह, बाप-बेटे दोनों ही मेरी सिधाई पर इस तरह मुसकरा रहे हैं कि···

(नींद आ रही है सिपाहीजी, इजाज़त मिले !

(जाऊं ? अच्छा, जाती हूं !

(एक बात···

(आपको मुझपर अब भी रंज है सिपाहीजी !

(नहीं न ?

(देखिए, आपका बेटा आपके ही पास खड़ा है !

(देख मुन्ने, जा रही हूं मैं !

(कहां, तेरे उस पापा के पास, जिनके साथ तू अभी-अभी मढ़िया-सुन्दरपुर हो आया है···

कामेश्वर ने आकर आहिस्ता से कंधे झकझोरे—"यहां क्यों सो रही हो ? इस तरह तो गर्दन अकड़ जाएगी ! चलो, उधर चलकर लेटो···"

कामेश्वर की नींद पूरी हो चुकी थी, वह बरामदे की रोशनी जलाकर बाथरूम के अन्दर चला गया।

उगनी ने कुर्सी से उठकर घड़ी देखी। साढ़े पांच बज रहे थे। अब कौन सोएगा। छ: पौने छ: में महरी आ धमकेगी।

ठंडे पानी के छींटे आंखों पर डालकर उगनी हाथ-मुंह धो आई। पलंग पर लेटकर कामेश्वर का इन्तज़ार करने लगी। चाहेगी तो अब नींद भी आ जाएगी उसको।

कामेश्वर बाथरूम से बाहर निकला।

लेटी हुई उगनी के शरीर पर अपना आधा बोझा डालकर वह उस-पर झुक आया। बालों पर हाथ फेरता हुआ बोला—"लगता है तुम्हें आज रात नींद नहीं आई। लगता है, रात-भर अनाप-शनाप सोचती रही हो!..."

उगनी मुसकराती रही और उसकी आंखों में आंखें डालकर देखती रही।

एकाएक पूछ बैठा—"बतलाओ तो इसका क्या नाम ठीक रहेगा?"

"किसका?" उगनी हंसने लगी।

कामेश्वर ने मुसकराकर होंठों को उसके कान से भिड़ाकर फुसफुसाया "इसका और किसका?"

उगनी बोली—"तुम बतलाओ।"

"मैं बतलाऊं?"

"जी, आपको ही बतलाना पड़ेगा..." उगनी मुसकराती रही। वह विभोर होकर कामेश्वर की आखों में आंखें गड़ाए पड़ी थी।

"अभी तुम सो जाओ, नाम फिर कभी बतला दिया जाएगा..." कुछ और भी कहने जा रहा था कामेश्वर कि उगनी की हथेली का स्टाम्प पड़ गया होंठों पर।

ज़रा देर बाद बोली—"नहीं, नाम तो बतला ही दो! आखिर मालूम तो हो जाए कि उसे हम क्या कहके पुकारेंगे..."

कामेश्वर ने उगनी की वह हथेली अपने सीने पर ले ली। बोला—

"उसका नाम होगा नवीनचन्द्र !"

"बड़ा ही प्यारा नाम होगा यह तो ! ··· ओह, मैं तो सोच भी नहीं सकती थी कि इतना अच्छा भी नाम किसी बच्चे का होगा···"

"खूब पसन्द आया ?"

"खूब भाई खूब !" कुछ देर तक वह चुप रही । जाने क्या सोचती रही ।

"लेकिन," एकाएक उगनी ने निगाहों को आमने-सामने करके पूछा —"मान लो लड़का न हुआ, लड़की हुई ?"

इसपर ज़रा देर कामेश्वर चुप रहा ।

सोच-साचकर बोला—"नवतारा नाम कैसा रहेगा ?"

"उहूं !" उगनी ने सिर हिलाया ।

'फिर किसीसे पूछकर बताऊंगा !"

"भाभी से कहना !"

"अभी क्या जल्दी है ! लेकिन अब तुम थोड़ी देर के लिए सो जाओ !"

"महरी आएगी न !"

"मैं जो हूं···तुम सो जाओ !"

वह दूसरी तरफ रुख करके लेट गई ।

उसने कम्बल खींचकर उगनी के बदन को कन्धों तक ढक दिया ।

दो रोज़ बाद, शाम की ट्रेन से भाभी लौट आईं। साथ उगनी की मां थी, नर्मदेश्वर था, छोटी उम्र की नौकरानी थी। अनाज की बोरी, घी की घड़िया, और कुछ दूसरी चीज़ें भी थीं।

मां-बेटी देर तक गले से लगकर रोती रहीं।

आखिर भाभी ने उन्हें चुप किया अपने आंचल के खूंट से उनके आंसू पोंछे और बोली—"अब क्यों रोती हो तुम लोग? दुःख के बादल छंट चुके हैं, आकाश अपना नीला रंग वापस पा गया है···उठो चाची, मुंह-हाथ धो आओ! नहाना चाहो, नहा लो! नाश्ता मैं पन्द्रह मिनट के अन्दर तैयार कर लेती हूं···उगनी, सब्ज़ी क्या-क्या बनेगी?"

मां को बाथरूम दिखलाकर उगनी रसोईघर के अन्दर आ गई। भाभी से कहा—"तुम थकी हो, जाओ, मैं कर लेती हूं···"

भाभी बोलीं—"मैं नहा-धोकर ताज़ा हो गई हूं। आराम से ही तो आई हूं, कौन-से चावल कूटती आई हूं गाड़ी में? अब इसी वक्त मुझे अपने चौके से बाहर न निकालो। कामेश्वर को आने दो, उनसे भी पूछ लेना!···

उगनी को हंसी आ गई।

बरामदे में सामान रख दिए गए थे। किचन से निकलकर उसने बन्द बोरी का मुंह खोलना चाहा। भाभी ने उधर से कहा—"रहने दो, पीछे रखेंगे सहेजकर।"

वहीं नौकरानी बैठी थी, उम्र बारह से ज़्यादा नहीं होगी। उगनी ने उससे पूछा—"क्या नाम है तेरा, गे ?"

"तीरा !" वह धीमी आवाज़ में बोली।

उगनी ने मन ही मन दुहराया—तीरा !

तीरा एक फूल है। बरसात के बाद शरद्ऋतु में खिलता है···कई रंगोंवाले तीरा फूल उगनी के दिमाग में घूम गए : बचपन में तुलसी-चबूतरे के इर्द-गिर्द हर साल वह तीरा के बीज बोती थी। अगहन तक उसके फूल पूजा में काम आते थे···उगनी अगली बरसात में भी तीरा के बीज बोएगी। बीज भाभी से मंगवा लेगी।

"तीरा, तुझे भूख लगी होगी !" उगनी ने उस छोकरी से कहा। उसने इसपर नई मालकिन की ओर देख-भर लिया।

मां ने पुकारा तो उगनी जाकर कपड़े दे आई।

वह नहा-धोकर निकली तो थोड़ी देर तक दूसरे कमरे के अन्दर बैठकर माला फेरती रही।

मां के दाहिने हाथ की उंगलियों में लिपटकर ढीली चेन की तरह पुरानी माला का उस प्रकार नीचे-ऊपर होना उगनी की आंखों को हमेशा अच्छा लगा है। आज, बहुत दिनों के बाद वह दृश्य देखा तो उसका मन प्रसन्न हो उठा।

हलुआ बना था, पकौड़े छाने गए थे।

भाभी ने मुसकराकर कहा—"चाची तो चाय नहीं पीएंगी !"

"नहीं" चाची बोलीं—"मैं चीनी घोलकर पी लूंगी !"

उगनी को तो नहीं, भाभी को हंसी आ गई।

सभी ने नाश्ता किया। चाय की प्यालियां खाली की गईं। नर्मदेश्वर आते ही कामेश्वर की खोज में निकल गया था। उन दोनों का नाश्ता ढककर रख दिया गया।

दूसरे कमरे में तख्तपोश पर मां के लिए बिस्तरा लगा दिया उगनी

ने। तीरा से कहा—"तू भी आज आराम कर।"

भाभी और उगनी उधर पलंग पर बातें करती रहीं। खाना पकाने की कोई हड़बड़ी नहीं थी। भाभी ने कहा था—"रात अपनी है, चाहे जब खाना पका लेना!"

पड़ोस के क्वार्टर से रेडियो की आवाज़ आ रही थी। फिल्म 'गंगा मइया' के गीत भाभी को अच्छे लगे थे, वे उन्हें बार-बार सुनना चाहती थीं। उगनी ने दाहिना हाथ उठाकर कहा—"इस ओर से लेकिन हिन्दी गीत कम सुनाई पड़ते हैं..."

"मद्रासी होंगे ये लोग!...अच्छा है, एक तरफ उत्तर के गाने सुनो, दूसरी तरफ दक्षिण के!...भाभी ने कहा, "हम तो घर पर विद्यापति और मीरा को सुनते हैं। बंगला समझती नहीं हूं मगर आवाज़ कानों को मीठी लगती है। हमारी इन्दिरा खूब बोलती है बंगला। कह रही थी अपने लड़के के बारे में कि चुन्नू दक्षिण भारत के पच्चीस-पचास शब्द सीख गया है...लगता है, आगे बच्चे बड़े तेज़ निकलेंगे!"

कामेश्वर और नर्मदेश्वर काफी देर बाद लौटे।

कामेश्वर ने मां के पैर छुए।

मां ने उसे उठाकर उसका माथा चूम लिया। बेचारी की दोनों आंखें भर आई थीं दिखाई नहीं दे रहा था कुछ भी। वह देर तक कामेश्वर की देह पर हाथ फेरती रही। लाख कोशिश करने पर भी इस वक्त शब्द होंठों की हद से बाहर नहीं आ रहा था।

भाभी ने आकर कहा—"चाची, दिन-भर का थका होगा यह भी! अभी इसे इजाज़त दो। मुंह-हाथ धोएगा, खाना खाएगा..."

उगनी की मां ने सिर हिलाकर अनुमति दी।

खाना-पीना खत्म करते-करते ग्यारह बज गए रात के। नर्मदेश्वर उधर से आठ बीड़े पान लेता आया था, नहीं तो यहां, कालोनी की इस

वीरान बस्ती में इस वक्त पान कहां से मिलता !

बारह बजते-बजते सभी सो गए। मर्द पहले कमरे में—औरतें दूसरे में।

बाथरूम की बिजली जलती रह गई थी। कामेश्वर उस स्विच को ऑफ कर आया और पानी पीकर फिर सो रहा।

जाने कैसे, ठीक सवा चार बजे उगनी की आंखें खुल गईं। वह दो-तीन दिनों से अपने को तैयार कर रही थी कि एक पत्र लिखे, साफ अक्षरों में। रात को, सोते समय उसने अपने आप निश्चय किया था कि तड़के वह सबसे पहले जाग जाएगी और चिट्ठी लिख लेगी। अब उगनी अपने पर खुश थी कि नींद टूट गई है···

कामेश्वर की पाकिट से फाउण्टेनपेन निकाल लाई, कागज़ कापी में से लिया। बाहर, बरामदे में आसन बिछाकर बैठी और झुककर देर तक लिखती रही।

पत्र पूरा करके वह उसे मोड़कर कामेश्वर के सिरहाने रख आई।

साढ़े छः तक सभी उठ गए।

थोड़ी देर बाद ही चाय आ गई।

चाय पीकर वे उठने ही वाले थे कि उगनी ने अन्दर आकर कामेश्वर से कहा—"सिरहाने कागज़ रखा है, दोनों जने पढ़ लेना !"

कागज़ निकल आया।

कामेश्वर और नर्मदेश्वर दोनों ही उत्सुक हो उठे और पत्र पढ़ने लगे :

"आदरणीय सिपाहीजी,

"मेरे अपराधों को आप कभी माफ नहीं करेंगे, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। दूर चली आई हूं, फिर भी इन कानों से आपकी गालियां सुनती रहती हूं। मैं मना नहीं करूंगी, आप खूब गालियां दीजिए सिपाहीजी !

"आपकी सन्तान समय पर बाहर आएगी। अषाढ़ में उसका जन्म ज़रूर होगा, आप रत्ती-भर भी चिन्ता न करें। मैं उसको कहीं फेंक नहीं आऊंगी। पाल-पोसकर उसे सयाना बनाऊंगी।

"मैंने अपना सब-कुछ जिसे सौंप दिया था, उसीके साथ गांव से निकली थी। जिसके साथ गांव से निकली थी, वही मुझे आपके क्वार्टर से निकाल लाया है। उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है। पराये गर्भ को ढोनेवाली अपनी प्रेमिका को फिर से, बिना किसी हिचक के, उसने स्वीकार कर लिया है। उसने मुझसे शादी कर ली है।

"वह इतना उदार है कि आपका बच्चा आसानी से आप तक पहुंचा देगा। मगर मैं वैसा नहीं होने दूंगी सिपाहीजी ! बच्चे पर आपका हक बहुत थोड़ा रहेगा, मेरा हक तीन-चौथाई से भी अधिक।

"बड़ा होगा तो मैं खुद ही उसे आपके पास भेजूंगी, अपने पिता से मिल आएगा। स्कूल-कालेज में पढ़ेगा। पिता की जगह आपका ही नाम दर्ज करवाया जाएगा। आप विश्वास रखें सिपाहीजी ! मैं जिन लोगों के बीच रहने आई हूं, वे बिलकुल ही नये ढंग के लोग हैं। उनमें से कोई भी मेरे इन विचारों का बुरा नहीं मानेगा।

"अषाढ़ के बाद अगर आपका जी करे तो अपने बच्चे को देख जाइएगा। दूसरी बार पत्र लिखूंगी, उसमें यहां का पता रहेगा।

"आपकी छाया में आठ महीने रही हूं। मन ही मन आपको पिता और चाचा मानती रही हूं और आगे भी वैसा ही मानती रहूंगी। मैं मजबूर थी, इसीसे आपको धोखा दिया। सिपाहीजी, आप मुझे सारा जीवन याद रहेंगे।

उग्रतारा"

कामेश्वर पलंग से उछलकर नीचे फर्श पर आ गया। आवाज़ लगाई—"उगनी ! ओ उगनी ! कहां गई तुम ?"

"आई !" अगले ही क्षण वह सामने थी।

लपककर कामेश्वर ने उसे बांहों में लेकर उठा लिया, बोला—"कितना अच्छा पत्र लिखा है तुमने ! इसे आज की ही डाक से रवाना कर दूंगा..."

भावावेग के मारे कामेश्वर से बोला नहीं जा रहा था। आंखें तरल हो आई थीं...

नर्मदेश्वर ने भी उगनी की पीठ ठोंकी, कहा—"वाह, तुमने तो कमाल कर दिया ऊगो !"

भाभी अन्दर आईं तो लपककर उन्होंने उस पत्र को तकिये पर से उठा लिया। जल्दी-जल्दी पढ़ गईं। बोलीं—"शाबास !"

वह उगनी के कान को लाड़ में उमेठकर कहने लगी—"बाप रे, कितना दौड़ता है दिमाग तेरा ! यह चिट्ठी पढ़ेगा तो सिपाही दंग रह जाएगा ! सोचेगा..."

उगनी ने अपनी हथेली से भाभी का मुंह बन्द कर दिया और भीगी निगाहों से नीचे फर्श की ओर देखती रही।

• • •

यदि आप चाहते हैं
कि हिन्दी में प्रकाशित
नवीनतम उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलता रहे,
तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें।
हम आपको इस विषय में
नियमित सूचना देते रहेंगे।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

कुछ उत्कृष्ट उपन्यास

वयं रक्षामः	: आचार्य चतुरसेन	१२·[illegible]
वैशाली की नगरवधू	: आचार्य चतुरसेन	१२·००
सोना और खून : भाग–१	: आचार्य चतुरसेन	६·००
सोना और खून : भाग–२	: आचार्य चतुरसेन	८·००
सोना और खून : भाग–३	: आचार्य चतुरसेन	८·००
सोना और खून : भाग–४	: आचार्य चतुरसेन	९·००
कब तक पुकारूं	: रांगेय राघव	१२·००
आखिरी आवाज़	: रांगेय राघव	८·००
सात घूंघट वाला मुखड़ा	: अमृतलाल नागर	४·५०
स्वप्नमयी	: विष्णु प्रभाकर	४·००
न आनेवाला कल	: मोहन राकेश	६·००
एक इंच मुस्कान	: राजेन्द्र यादव : मन्नू भंडारी	६·५०
तीसरा पत्थर	: रामकुमार भ्रमर	५·००
कलाकार	: नानकसिंह	३·५०
एक म्यान दो तलवार	: नानकसिंह	६·००
गिरते महल	: गुरुदत्त	८·००
जग एक सपना	: गुरुदत्त	६·००
आठवीं भांवर	: आनन्दप्रकाश जैन	५·००
इमरतिया	: नागार्जुन	३·००
पांच बरस लम्बी सड़क	: अमृता प्रीतम	४·५०
दिल्ली की गलियां	: अमृता प्रीतम	३·००
जलावतन	: अमृता प्रीतम	५·००
नागमणि	: अमृता प्रीतम	४·००
कार्निवाल	: कृश्न चन्दर	४·००
दादर पुल के बच्चे	: कृश्न चन्दर	३·५०
दूसरा पुरुष दूसरी नारी	: कृश्न चन्दर	५·००

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली